॥ श्रीश्रीकृष्णचैतन्यनित्यानन्दौ जयतः ॥

श्रीमत्श्रीकृष्ण द्वैपायन महर्षि वेदव्यास प्रणीत श्रीमद्भागवत
महापुराण, निगमागम इत्यादि
से संग्रहीत

महाभावस्वरूपा श्रीराधा-नाम

सङ्कलनकर्त्ता—
भागवतभूषण श्रीनित्यानन्द भट्ट



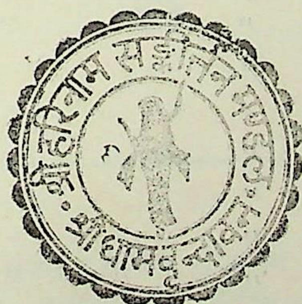
प्रकाशक—श्रीहरिनाम सङ्कीर्त्तन मण्डल, श्रीधाम वृन्दावन

।। श्रीश्रीकृष्णचैतन्यनित्यानन्दौ जयतः ।।

श्रीमच्छ्रीकृष्ण द्वैपायन महर्षि वेदव्यास प्रणीत श्रीमद्भागवत
महापुराण, निगमागम इत्यादि
से संग्रहीत

महाभावस्वरूपा श्रीराधा-नाम

सङ्कलनकर्त्ता—
भागवतभूषण श्रीनित्यानन्द भट्ट



प्रकाशक—श्रीहरिनाम सङ्कीर्त्तन मण्डल, श्रीधाम वृन्दावन

विषयानुक्रमणिका





प्रकाशक : श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल, वृन्दावन
द्वितीय संस्करण : १००० प्रतियां/श्रीगुरु पूर्णिमा सं० २०४८
दिनांक २६।७।९१ शुक्रवार
मुद्रक : श्रीहरिनाम प्रेस, वृन्दावन
• न्यौ० दस रुपये

॥ जय श्रीराधे ॥

नम्र निवेदन

आज से बीस वर्ष पूर्व प्रस्तुत अद्वितीय पुस्तिका—'महाभाव-स्वरूपा श्रीराधानाम' का संकलन श्रीभागवत-संहिता के सुप्रसिद्ध व्याख्याता, विद्वद्वरेण्य, परम श्रद्धेय श्रीनित्यानन्द जी भट्ट द्वारा किया गया, जो अब हमारे बीच नहीं हैं। इसे श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल ने प्रकाशित किया था। बहुत काल से यह स्टॉक में समाप्त हो गयी थी। श्रीराधारसाभिषिक्त भक्तों की नित्यप्रति संवर्द्धित मांग को देखकर मण्डल श्रीस्वामिनी जी की कृपा से इसका द्वितीय संस्करण प्रस्तुत कर रहा है।

संकलनकर्त्ता श्रीभट्ट जी का मुख्य उद्देश्य था—इसके द्वारा कई एक निर्मूल आक्षेपों का निरसन करना—"श्रीमद्भागवत में श्रीराधा-नाम का उल्लेख नहीं है। श्रीराधानाम का प्रकाश तो हमारे आचार्यों की देन है। आधुनिक काल में ही श्रीराधा की कल्पना कर ली गयी है"—इस प्रकार की कतिपय आशंकाओं का श्रीभागवत-शास्त्र पारंगत श्रीभट्टजी ने मूलतः खण्डन किया है इस कृति में। उन्होंने श्रीभागवत में जिस-जिस स्थान पर, जिस रूप में श्रीराधानाम का उल्लेख है, उसको सप्रमाण निरूपण किया है। आधुनिक आचार्यों द्वारा श्रीराधानाम के प्रकाश की बात कहकर गाल फुलाने वाले लोगों की भी अहंभाव भरी धारणा का खण्डन किया है—उन्होंने चारों वेदों, उपनिषदों, पुराणों, तन्त्र एवं आगम-शास्त्रों का आद्योपान्त अध्ययन एवं महान् परिश्रम पूर्वक अन्वेषण कर उन लोगों को स्पष्ट बताया है कि परब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण की महाभाव स्वरूपा कान्ता-शिरोमणि श्री-वृषभानुनन्दिनी का 'राधा' नाम से नामकरण एवं उसका प्रकाश किसी भी आधुनिक आचार्य या उनके पुरखों द्वारा नहीं

किया गया । उनका अनादि सिद्ध नाम है—श्रीराधा । 'श्रीराधा की अर्वाचीनकाल में कल्पना की गयी है'—ऐसी कल्पना करना तो उन आधुनिक बुद्धि-जीवियों की मायापह्लत ज्ञानमयी सूझ है, जो स्वयं अपनी शोध न करके अपौरुषेय शास्त्रों की भ्रामक शोध के व्यपदेश से धन-मानोपार्जन में लग रहे हैं ।

वास्तव में इस प्रकार की आशंकाओं और आक्षेपों का मूल है—वेदोपनिषद, पुराण-इतिहास विशेषत: सर्वशास्त्र मुकुटमणि श्रीमद्‌भागवत का न तो समाहित चित्त होकर किसी वैष्णव महत् पुरुष के श्रीमुख से श्रवण करना और न परमोपास्य-तत्त्व का शास्त्रीय ज्ञान होना । अत: वे लोग यह नहीं जान पाते कि सच्चिदानन्दघन स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण की कोई भी लीला, उसमें भी श्रीवृन्दावनीय दिव्याति दिव्य मधुररसमयी कोई भी लीला उनकी स्वरूप-शक्ति श्रीराधाजी के बिना सम्पन्न हो ही नहीं सकती । श्रीमद्‌भागवत के दशम स्कन्ध की प्राणस्वरूप श्रीरास पंचाध्यायी में तो श्रीव्रजेन्द्रनन्दन के साथ उनकी प्राणवल्लभा महाभावस्वरूपा श्रीराधाजी नाम-गुण-लीला–माधुरी का अद्‌भुत परिवेषण है, रसिकों का प्राण जीवनधन है उसका आस्वादन । किन्तु जैसे मेंहदी के पत्तों में सन्निविष्ट लालिमा स्पष्ट रूप से नहीं दीखती । उन पत्तों को पीसकर जब हाथ पांवों पर लगाया जाता है, कुछ समय की प्रतीक्षा करने पर, सूखने के बाद वह लालिमा स्पष्ट चमक उठती है, उसी प्रकार श्रीराधारानी की परम निगूढ़तम नाम-गुण-लीला माधुरी की लालिमा भी उस पुरुष के सत्वोज्ज्वल हृदय-पटल पर रंग लाती है, जिसने श्रीश्रीप्रिया–प्रीतम के निज परिकरों के अवतार-स्वरूप श्रीश्रीवैष्णवाचार्यों की रहस्यमयी अद्‌भुत व्याख्याओं के तात्पर्यार्थ को घिस-पीसकर अपने हृदय-पटल पर लेपन किया है, श्रीराधाकृपांजन-अंजित नेत्र ही उस माधुरी का वह दर्शन कर पाता है ।

सुधी तत्त्ववेत्तागण यह तो जानते ही हैं कि ब्रह्मसूत्रों के तात्पर्यार्थ प्रकाशक, महाभारत के अर्थों के निर्णायक, गायत्री के भाष्य स्वरूप समस्त वेदों के संवर्द्धित अर्थरूप एवं सर्ववेदों में सामवेद की भांति समस्त पुराणों में मुकुटमणि इस श्रीमद्‌भागवत महापुराण का श्रीवेदव्यास के हृदय में समाधि-

व्यपदेश से आविर्भाव हुआ था, इसके बिना जीव का चरमतम परम श्रेय साधित होना असम्भव था, क्योंकि इसमें ही सच्चिदानन्द स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण की मधुरतम लीला कथाओं की प्रधानता है। श्रीकृष्ण-लीलारस निषेवण के बिना दुस्तर संसारसिन्धु से पार जाना नितान्त असम्भव है। उस अथाह लीला रसमाधुर्य सागर के परिवेषण में श्रीश्रीप्रिया-प्रीतम की मधुरातिमधुर गूढ़ निकुञ्ज लीलाओं की उपेक्षा कैसे की जा सकती थी ? इसलिये अपने द्वारा गर्भ में ही परिरक्षित परम-भागवत श्रीपरीक्षित जी को माध्यम बनाकर स्वयं श्रीभगवान् ने उन मधुरतम लीलाओं के परिवेषण के लिये श्रीश्री-राधाजीके वामहस्त-विहारी, श्रीलीला शुक को श्रीशुकदेवजी के रूप में अवतरित कराया। वे उन लीलाओं के प्रत्यक्षदर्शी थे।

श्रीशुकदेव मुनिवर नवम स्कन्ध तक समस्त कथा-प्रसंगों को मुक्तकण्ठ से गान करते चले गये। जिस समय दशम स्कन्ध, विशेषत: श्रीरासपंचाध्यायी के वर्णन का समय उपस्थित हुआ तो निकुञ्जेश्वरी श्रीराधाजी ने श्रीशुकदेव जी को कहा—हे लीला-शुक ! मैं जानती हूँ कि तुम अब मेरी और मेरे प्राणधन श्रीश्यामसुन्दर की निगूढ़ मधुर लीलाओं को कहे बिना न रह सकोगे, किन्तु सावधान ! इस सभा में श्रीसनकादि, नारदादि अनेक देवर्षि, राजर्षियों का वयोवृद्ध समाज उपस्थित है। वे सब हैं शान्त रस के उपासक—ज्ञानी-योगी, तपस्वी। कोई भी वृन्दावनीय रसों का, विशेषत: मधुररस का अधिकारी यहां नहीं बैठा है, अत: तुम ऐसे लीला–प्रसगों में मेरा तथा मेरी किसी भी सखी-सहेली—मधुरभावात्मिका परिकरजनों का नाम भूलकर भी मत उच्चारण करना। कह जाना सब प्रसङ्ग, किन्तु हमारा किसी का भी नाम स्पष्ट रूप से मत लेना। रसिकजन परोक्ष वर्णन में अपने आप ही समझ जायेंगे।

यही मुख्य कारण है कि श्रीमद्भागवत में श्रीलीलाशुक—श्रीशुकदेव मुनि ने श्रीस्वामिनी श्रीराधाजी का आदेश पालन करते हुए किसी भी गोपी का नाम नहीं लिया, श्रीराधानाम का तो क्या कहना ? फिर भी श्रीराधाजी के अनन्तानन्त नामोंमें अनेक नामों का उनके पर्यायवाची नामों का उच्चारण कर गये। 'अधजल गगरिया

छलकत जाये'—न्याय से बचकर श्रीशुकदेव जी ने श्रीराधानाम को छलकने नहीं दिया—यह उनका परम गम्भीर कौशल है। अस्तु,

अनेक श्रीराधा-चरणकमल-चंचरीक रसिकजनों का यह कहना कि 'श्रीराधानाम-महत्व परक इस अभूतपूर्व कृति में श्रीराधाजी का महाभाव-स्वरूपत्व घूंघट मारे ही रह गया है। 'महाभाव-स्वरूपा' श्रीराधाजी का एक रहस्यमय विशेषण मात्र ही लगता है—उनका कहना निश्चयही युक्त और संगत है। विद्वद्वरेण्य श्रीभट्टजी ने ग्रन्थ-विस्तार भय से इस विषय को स्पर्श नहीं किया। श्रीचैतन्य चरितामृत तथा श्रीउज्ज्वल नीलमणि में महाभावस्वरूपत्व का, उसके अनुभावों का उदाहरणों सहित विस्तारपूर्वक वर्णन है। इस विषय पर श्रीभट्टजी का ही कृपाबल प्राप्तकर किंचित् संक्षेपमें निवेदन करने का दु:साहस करता हूँ—

महाभावस्वरूपा श्रीराधा

श्रीभागवत-सिद्धान्त पारंगत रसिक अनन्य चूड़ामणि श्रीकृष्ण दास कविराज गोस्वामी ने कहा है—

ह्लादिनी-सार 'प्रेम', प्रेम-सार 'भाव'।
भावेर पराकाष्ठा नाम 'महाभाव'॥
महाभावस्वरूपा श्रीराधा-ठाकुराणी।
सर्वगुणखानि कृष्ण-कान्ता शिरोमणि॥

श्रीचैतन्य चरितामृत, १।४।५९-६०

ह्लादिनी का सार है 'प्रेम'। प्रेम का सार है 'भाव'। भाव की पराकाष्ठा है 'महाभाव'। श्रीकृष्ण-कान्ता-शिरोमणि सर्वगुणगणालंकृत श्रीराधा स्वामिनी महाभाव स्वरूपा हैं।

प्रेम की परम परिणति है 'महाभाव'। किन्तु जिस प्रेम की परम परिणति महाभाव है, वह प्रेम, झूँठा या प्राकृत प्रेम नहीं है, जिसे जगत् में हम प्रेम कहते हैं या मानते हैं। जगत् में जो प्रेमनाम से प्रसिद्ध है वह प्राकृत अन्तःकरण की एक वृत्ति विशेष है। उस वृत्ति का लक्ष्य है एकमात्र अपने देहेन्द्रियों की सुख वासना। जहां अपने सुख की वासना है, वह वास्तव में प्रेम-शब्द का वाच्य नहीं, वह है 'काम'। श्रीकृष्णेन्द्रियों की सुख-वासना का नाम है प्रेम। इस

प्रेम में श्रीकृष्ण-सुख-वासना को छोड़कर अपने सुख की गन्ध मात्र भी नहीं है न अपने दुख-निवृत्ति का आभास। उस प्रेम की परिणति है महाभाव। वही प्रेम ही ह्लादिनी का सार है।

परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। 'आनन्दं–ब्रह्म'। आनन्दघन मूर्ति हैं श्रीकृष्ण। वह आनन्द सत् है एवं चित् है। आनन्द विशेष्य है और सत्, चित् उसके विशेषण हैं। सत् अंश में सन्धिनी अर्थात् सत्ता, चित् अंश में सम्वित् अर्थात् ज्ञान और आनन्द-अंश में ह्लादिनी।

इस प्रकार सच्चिदानन्दमय भगवान् श्रीकृष्ण की स्वरूपशक्ति की त्रिविध अभिव्यक्ति है। जैसे अग्नि की शक्ति दाहिका, पाचिका और प्रकाशिका—इन तीनों रूपों में अभिव्यक्त होती है। त्रिविध अभिव्यक्ति होते हुए भी वह स्वरूपशक्ति एक ही है। तीनों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। किन्तु तीनों में, सन्धिनी से सम्वित् का उत्कर्ष है और सम्वित् से ह्लादिनी का परमोत्कर्ष है। आनन्दस्वरूप परब्रह्म श्रीकृष्ण जिस शक्ति के द्वारा अपने आनन्द स्वरूपत्व का अपने भक्तों को अनुभव कराते हैं एवं उस अनुभव को विषय बनाकर स्वयं भी आत्मभूत परमानन्द का साक्षात्कार करते हैं—अनुभव एवं आस्वादन करते हैं, उस आनन्ददायिनी स्वरूपशक्ति का नाम है ह्लादिनी। प्रेम उस शक्ति का सार है। अतः प्रेम भगवदीय तत्त्व है। वह नित्य सिद्ध वस्तु है। भगवत्-कृपापुष्ट साधनों के प्रभाव से जब जीव के चित्त से भुक्ति-मुक्ति की वासना रूप मलिनता पूर्णतया दूर हो जाती है, तब उसके चित्त में शुद्ध सत्व आविर्भूत होकर प्रेम रूप में उदित हो उठता है। किन्तु नित्यसिद्ध भगवत् परिकरों के चित्त में अनादिकाल से वह प्रेम नित्य विद्यमान् है।

भगवत्-रति या प्रेम क्रमशः गाढ़ता प्राप्त कर स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव के नामोंसे अभिहित होता है।[1] यहाँ भाव तथा महाभाव के विषय में विशेष जानकारी अभीष्ट है।

१—इन सब प्रेम के स्तरों का विस्तृत वर्णन लेखक द्वारा सम्पादित श्रीमद् वैष्णव सिद्धान्तरत्न के 'प्रेम-तत्व' में दृष्टव्य है।

भाव—अनुराग की चरम परिणति का नाम है 'भाव'। इस स्तर में श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिये प्रेमी स्वजन, आर्यपथ-वेद धर्मों का परित्याग कर देता है। प्राण त्यागने का दुख भी उसे श्रीकृष्ण प्राप्ति के निमित्त अति तुच्छ प्रतीत होता है, बल्कि परम सुखमय लगता है। भाव के दो स्तर हैं—रूढ़-भाव और अधिरूढ़-भाव।

रूढ़-भाव स्तर का विकाश एकमात्र श्रीव्रजगोपियों में होता है, श्रीशुकदेव मुनिवर ने कहा है—

एताः परं तनुभृतोभुवि गोपवध्वो,
गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढ़भावाः।
वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च,
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥

श्रीभा० १०।४७।५८

अर्थात् धरणीतल पर श्रीगोपरमणियों ने ही परम श्रेष्ठ एवं सफल शरीर धारण किया है, क्योंकि अखिलात्मा भगवान् श्रीकृष्ण में इनका रूढ़भाव विद्यमान है। प्रेम की यह रूढ़भाव-अवस्था संसार से भयभीत मुमुक्षुजनों के लिये ही नहीं, अपितु बड़े-बड़े मुनियों—मुक्तपुरुषों के लिये भी तथा हम भक्तजनों के लिये भी वाञ्छनीय है, अभी तक इसकी हमें प्राप्ति नहीं हो सकी। भगवान् श्रीकृष्ण-कथा रस के बिना महाकल्पों तक बार-बार ब्रह्मा-जन्म लेने से क्या लाभ ? अथवा ब्रह्म-ज्ञान की कथा से क्या लाभ ?

श्रीव्रजगोपियों में अपने सुख की गन्धमात्र भी नहीं है, उनके चित्तेन्द्रिय एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण में केन्द्रित हैं। इसी भाव के कारण वे दुस्त्यज्य आर्यपथ एवं स्वजनों का परित्याग किये हुए हैं। श्रीउद्धव जी ने श्रीव्रजगोपियों के दुस्त्यज्य-स्वजन आर्यपथ को त्याग कर श्रुतियों द्वारा अन्वेषणीय श्रीमुकुन्द-पद का भजन-सेवन देखकर उनकी चरणरज के सेवन के लिये वृन्दावन में गुल्म, लता-औषधियों के जन्म प्राप्त करने की प्रार्थना की है।

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां,
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।

या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा,
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ।।
श्रीभा० १०।४७।६१

यहां यह भी ध्यातव्य है कि श्रीव्रजगोपियों का यह रूढ़ भावात्मक कृष्णप्रेममय सेवन किसी सम्बन्धानुगत नहीं है, प्रगाढ़ प्रेमानुगत है। श्रीरुक्मिणी-सत्यभामादि द्वारका महिषियों की भांति विवाह-बन्धन जनित नहीं है। श्रीरुक्मिणी आदिक में रूढ़भाव विद्यमान नहीं है। यह इस बात से स्पष्ट है कि श्रीरुक्मिणी जी भगवान् श्रीकृष्ण-प्राप्ति के लिये सौ जन्म तो पाने के लिये कहती रहीं थीं, परन्तु स्वजन-आर्यपथ का परित्याग न कर सकीं। ब्राह्मण के साथ श्रीकृष्ण के पास नहीं गयीं। श्रीरुक्मिणी आदि महिषियों का प्रेम अनुराग की शेष सीमा या भाव की पूर्व सीमा तक पहुँच पाता है। स्वजन-आर्यपथ—या लोक-वेद धर्मादि का परित्याग एकमात्र रूढ़-भावमती श्रीव्रजगोपियों की विशेषता है।

अधिरूढ़-भाव—अधिरूढ़-भाव के दो प्रकार हैं—मोदन और मादन। भाव और महाभाव एकार्थक हैं।

मोदन-महाभाव—हर्षात्मक 'मुद' धातु से निष्पन्न मोदन का अर्थ है 'आनन्द'। प्रेम द्विनिष्ठ वस्त है। संयोग अवस्था में प्रेम का विषय और प्रेम का आश्रय अर्थात् श्रीकृष्ण श्रीराधादि व्रजसुन्दरीगण—दोनों के शरीर पर आनन्दजनित प्रेम के सात्त्विक भाव अति सुष्ठु रूप में प्रकाशित हो उठते हैं। इस मोदन-महाभाव के प्रकट होने पर दोनों अति हर्ष प्राप्त करते हैं। मोदन-महाभाव एकमात्र श्रीराधाजी में एवं उनके यूथ की श्रीव्रजसुन्दरियों में ही रहता है।

मोहन-महाभाव—विरहावस्था में उपर्युक्त मोदन-महाभाव को 'मोहन-महाभाव' का नाम दिया जाता है। मोहन-महाभाव में विरहजनित विवशता के कारण समस्त सात्त्विक भाव सुदीप्त हो उठते हैं। कम्प में दाँत जोर से खट-खट शब्द करके बजने लगते हैं। स्वर-भग में वचन कण्ठ में ही रह जाते हैं, इत्यादि। श्रीराधाजी में ही प्रायः यह मोहन-महाभाव प्रकाशित होता है। उनमें चित्रजल्प एवं उद्घूर्णा-लक्षणात्मक दिव्योन्माद प्रकाशित हो उठता है—श्रीमद्भागवत में वर्णित भ्रमर-गीत इसका उदाहरण है।

मादन-महाभाव—मद् धातु से निष्पन्न है मादन-शब्द। इसमें दिव्य मधु की तरह एक विचित्र हर्षोन्मत्तता है। श्रीकृष्ण मिलन में जितने प्रकार की आनन्द वैचित्री का उद्भव हो सकता है, इसमें उन सब आनन्दवैचित्रियों के युगपत अनुभव के साथ-साथ एक दिव्य आनन्दमत्तता का विकाश होता है। मादन-महाभाव का यह अद्भुत वैशिष्टच है। मादन में विरह का अभाव है। इसमें रति से लेकर महाभाव पर्यन्त समस्त भाव ही सर्वोत्कर्ष से उल्लासशील होते हैं। जैसे की श्रीपाद रूपगोस्वामी ने कहा है—

सर्वभावोद्गमोल्लासी मादनोऽयं परात्परः।
राजते ह्लादिनीसारो राधायामेव सर्वदा।।

श्रीउज्ज्वल नीलमणि, स्थायी भाव, ११३

मादन-महाभाव में ह्लादिनी के सारभूत प्रेम के सर्वभावों का उद्गम उल्लसित होता है। मादन प्रेम की परात्पर अर्थात् गाढ़तम परिणति है। यह मादन केवल श्रीराधाजी में ही सर्वदा विराजमान रहता है अर्थात् कभी बाहर प्रकाश पाता है, कभी यह उनके अन्तः-करण में ही प्रच्छन्न भाव से रहता है। यह उनकी निजी सम्पत्ति है। और किसी भी व्रजसुन्दरी में, श्रीराधाजी के यूथ की किसी गोपी में यहां तक कि लीला में श्रीकृष्ण में भी इसका विकास नहीं है।[1]

'महाभावस्वरूपा' से एकमात्र 'मादनाख्य-महाभाव-स्वरूपा' ही जानना चाहिये। मादनाख्य-महाभाव ही श्रीराधाजी का स्वरूप है। 'स्वरूपा' का तात्पर्य है श्रीराधाजी मादनाख्य महाभाव की विग्रह हैं। उनके भीतर बाहर मादन-महाभाव के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

सारांश यह है कि परब्रह्म सच्चिदानन्दघन स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण की मुख्य तीन रूपों में अभिव्यक्त स्वरूपशक्ति में सर्वश्रेष्ठ है ह्लादिनी शक्ति। उस ह्लादिनी-शक्ति का सार है

१—मादन-महाभाव की अद्भुत अनन्त विशेषताओं का सविस्तार अध्ययन लेखक द्वारा सम्पादित श्रीउज्ज्वल नीलमणि (रूपकृपा तरंगिणी टीका सम्वलित) में करें।

प्रेम। प्रेम का सार है भाव या महाभाव। उस महाभाव की परम चरमतम पराकाष्ठा है मादनाख्य महाभाव। श्रीकृष्ण कान्ता-शिरोमणि सर्वगुण खानि स्वामिनी श्रीराधाजी इस प्रकार मादनाख्य महाभाव स्वरूपा हैं।

मेरा विश्वास है कि इस आलोचना से श्रीराधारसाभिषिक्त-चित्त रसिकजन प्रस्तुत अद्वितीय ग्रन्थ—"महाभाव स्वरूपा श्रीराधा-नाम" में उल्लिखित 'महाभावस्वरूपा' विशेषण के गूढ़ तात्पर्य को हृदयंगम कर सकेंगे और निवेदक इसी में ही अपने को कृतार्थ मानेगा।

श्रीधाम वृन्दावन
श्रीरथयात्रा महोत्सव
संवत् २०४८
(दि० १३-७-१९९१)
शनिवार

वैष्णवपदरजाभिलाषी—
श्रीश्यामदास



❀ श्रीमद्राधामदनमोहनौ जयतः ❀

महाभावस्वरूपा श्रीराधा-नाम

मंगलाचरणम्

श्रीमहर्षिवेदव्यासस्य—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत् सूरयः
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ।

श्री भा० १-१-१

अथवा—रं बीज युक्त राधां धीमहि ।

'परं' राधाकृष्णतत्त्वं (नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्य तरस्याम्)अत्र एकशेषो परं च पराच परे "मत्त परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जयः ।" इति भगवद्गीता वाक्येन परं श्रीकृष्णं तथा च 'शक्तिः स्वतन्त्रापरा' इति गौतमीयतन्त्र वाक्येन परा श्रीराधा । परं श्रीराधा-कृष्ण तत्वं ध्यायेमः,यतः याभ्यां आधास्य श्रृङ्गार रसस्य जन्मः । इतर गोपी यूथ सकाशात् यस्यां श्रीराधायां अन्वयात् यः अर्थेषु श्रृङ्गाररस-लीला निर्वाहेषु अभिज्ञः विदग्धः यः आदि कवये भरत मुनये ब्रह्म श्रृङ्गार रसतत्वं हृदा स्वेच्छया तेने श्रृङ्गार रस प्रतिपादन स्फूर्तिस्तेने । यत् यस्मिन् श्रृङ्गार रसे सूरयः ब्रह्म ज्ञानिनः मुह्यन्ति । तेजो-वारिमृदां यत्र विनिमयो वेणुवादने श्रीयमुनायाः काठिन्यं जतुवत् मृदभावं गोवर्द्धनग्रावाणाः द्रवभावं संवलनतः मार्दवं मृदिजलभावं कृष्णचन्द्र-सन्निधानेन [illegible] निरस्तेनतं । यत्र त्रिसर्गो सृष्टो मध्या परा

त्रयो रसावस्था अमृषा एक रसं भवतीति शेषः। सत्यमित्यर्थः स्वेन धाम्ना श्रीवृन्दावनेन सदा निरस्त कुहक छद्म मिति।

श्रेय भागवताङ्क व्याख्या (श्री भा० १-१-१)

श्रीभागवती संहिता हमारे हृदय में उदय हो, अतः ह्लादिनी शक्तिरूपा श्रीराधा जी का हम ध्यान करते हैं–रं बीज युक्त परा श्री-स्वामिनी जी का ध्यान करते हैं। साथ में पर तत्व श्रीराधाकृष्ण का– क्योंकि उनसे 'पर' कोई वस्तु नहीं है स्वयं प्रभु ने कहा है। जिन दोनों नायक-नायिका द्वारा शृङ्गाररस का जन्म है। इतर गोपीगणों द्वारा लीला निर्वाह है। भरत मुनि ने जिन शृङ्गाररस तत्व को हृदय में देखा। जिस उज्ज्वल रस में ब्रह्म ज्ञानी भी विमोह को पा जाते हैं। तेज में वारि, यमुना में काठिन्य, गोवर्द्धन शिला में कोमल-तादि विनिमय भाव जिसके वंशीनाद से हो जाता है। जिस प्रिया के मिलन काल में मृद्वी, मध्या, परा तीनों अवस्था एक रस हो जाती हैं। अतएव वही सत्य है। स्वस्वरूप धाम श्रीवृन्दावन नव निकुञ्ज में सर्वदा जिन प्रियाप्रियतम के मिलन में छद्म दूर हो गया है उस स्वामी-स्वामिनी का हम आराधन करते हैं।

ऋग्वेद परिशिष्ट श्रुतौ–राधयामाधवोदेवो माधवेनैव राधिका विभ्राजन्ते जनेष्वा इति। विभ्राजन्ते विभ्राजते आसर्वत इति श्रुति पदार्थः–एतत् सर्वमभिप्रेत्य मूर्द्धन्य श्लोके तादृशोऽप्यर्थः (राधापरो) सन्दधे जन्माद्यस्येति—

यतोऽन्वयात् अन्वेति अनुगच्छति सदा निज परमानन्दशक्तिरूपायां तस्यां श्रीराधाया मासक्तो भवतीत्यन्वयः। श्रीकृष्णः। तथा इतरतः इतरस्याश्च तस्य सदा द्वितीयायाः श्रीराधाया एव यतोयस्या आद्यस्य आदि रसस्य (शृङ्गाररसस्य) जन्म प्रादुर्भावः। यावेव आदिरस विद्यायाः परम निधानमित्यर्थः [आश्रयतत्वतात्]

अतएव तयोरत्यद्भुत विलास माधुरीधुरीणता मुद्दिशतीति— य अर्थेषु तत्तद्विलासकलापेषु अभिज्ञो विदग्धः या च स्वेन आत्मना राजते विलसतीति स्वराट्। अतएव सर्वतोऽप्याश्चर्य रूपयोर्वर्णने मम तत् कृपैवसामग्रीत्वाह—आदिकवये प्रथमं तल्लीलावर्णनमारभमाणाय मह्यं श्रीवेदव्यासाय हृदा अन्तःकरणद्वारैव ब्रह्म [illegible] प्रति-

पादकं शब्द ब्रह्म यस्तेने । सर्वमिदं महापुराणं मम हृदि प्रकाशित-बानित्यर्थः ।

यद् यस्यां ब्रह्मादयोऽपि मुह्यन्ति—सा यदि मयि कृपां ना करिष्यत् तदा लब्ध माधव तादृशकृपस्यापि मम—"तैस्तैपदैः वध्वापदैः इत्या-दिना तस्या लीला वर्णन लेशोऽपि साहससिद्धिरसौ नाभविष्यदेवेति-भावः ।

तत्र तेजसश्चन्द्रादे स्तत् पद-नख-कान्ति विस्फारितादिना वारिमृद्वन्निस्तेजस्त्वधर्मावाप्तिर्वारिणो नद्यादेश्च वंशीवाद्यादि-नाख्यादि तेजोवदुच्छलता प्राप्तिः । पाषाणादेमृदवच्चस्तम्भता प्राप्तिः । मृदश्च पाषाणादेस्तत्कान्ति कन्दलीच्छुरितत्वेन तेजोवदुज्व-लता प्राप्ति वंशी वाद्यादिना वारिवच्चद्रवता प्राप्तिरिति ।

यत्र यस्यांश्च विद्यमानायां त्रिधासर्गः श्रीभूलीलेति शक्तित्रयी प्रादुर्भावोऽथवा द्वारिका मथुरा वृन्दावनानीति स्थानत्रय गत शक्ति-वर्गत्रय प्रादर्भावो रसव्यवहारेण सुहृदुदासीन प्रतिपक्ष नायिका रूप त्रिभेदानां सर्वासामपि व्रजदेवीनामेव प्रादुर्भावो वा मृषामिथ्यैव । यस्याः सौन्दर्यादि गुण सम्पदा तास्ताः कृष्णे न किञ्चदिव प्रयोजन-मर्हन्तीत्यर्थः तत धीमहीति—परस्परमभिन्नतांगतयोरैक्येननैव विवि-क्षितम् ।

कथं भूतं स्वेन धाम्ना स्वप्रभावेण सदा निरस्तं स्वलीला प्रति-वन्धकानां कुहकं मायायेन तत् । तथा सत्यं तादृशत्वेन नित्य सिद्धम् । अतएव परं अन्यत्र कुत्राप्यदृष्टगुणलीलादिभिः विश्व विस्मापकत्वात् सर्वतोऽप्युत् कृष्टमिति । अतः सर्वतोऽपि सान्द्रानन्द चमत्कारक श्री-वृन्दावनेऽपि परमाद्भुत प्रकाशः श्रीराधया युगलितः श्रीकृष्ण इति ।

अत एवाह सष्टा वैष्णवाचार्यादिभिः—

अद्वैतमतस्याद्याचार्य श्रीमच्छङ्कराचार्ये यमुनः स्तोत्रे कथितम् यथा—विधेहि तस्य राधिकाधवांघ्रि पङ्कजेरतिमिति ।

अद्वैत मत के आद्याचार्य श्रीमत् शङ्कराचार्य ने 'यमुना स्तोत्र' में कहा है कि—उन राधिका के नित्य पति श्रीकृष्णचन्द्र के चरणों में

मुझे रति दान करिये।

विशिष्टाद्वैत मते रामानुज सम्प्रदाये (राधाकृष्णभूषणे कथितं यथा-) श्रीरामानुजाचार्यैरपिलक्ष्मा: विष्णु भिन्नत्वमेवारेरीकृतं— वैष्णवास्तां महालक्ष्मी परां राधां प्रचक्षते (५ पृष्ठे साक्षाल्लक्ष्मी-समुत्पन्नागोदारूपेण भूतले।) ब्रह्मवैवर्त प्रकृति खण्डे ५१ अध्याये-उक्तेः।

विशिष्टाद्वैत मतावलम्बी रामानुज सम्प्रदाय में श्रीमत् रामानुजाचार्यने लक्ष्मी को श्रीविष्णु से अलग उनकी ही स्वरूप-शक्ति माना है। उन्होंने कहा है—वैष्णवगण उन महालक्ष्मी को परा शक्ति 'राधा' कहते हैं—यह ब्रह्मवैवर्त पुराण के प्रकृतिखण्ड ५१ अध्याय में बतलाया गया है। उन्होंने श्रीकृष्ण को 'श्रीरङ्गनाथ' और राधाजी को 'गोदा' पर्यायवाची नामों से कहा।

द्वैत मते श्रीमध्व मुनिनां 'हरिविरिञ्चहरेति' श्लोके प्रथम स्कन्धस्य भागवत तात्पर्य टीकायां श्रीमदाचार्यैरुक्तं-ता: शक्तय: लक्ष्म्यां तदभिन्नराधिकायां च प्रवेश्यैवताभि: स्वशक्तिभि: लक्ष्मा राधिकया च क्रीडति (राधाकृष्ण भूषणे ४ पृष्ठे)

गोपनादुच्यते गोपी श्रीलीलाराधिकाभिधा। सैषा हि राधिका गोपी जन तस्या: सखीजन इत्यादि अनेक गोपाल तापनीस्थ कृष्ण मन्त्रस्थ गोपी जन वल्लभायेति पदस्थ गोपीपद प्रतिपाद्येयं राधिकेति स्पष्ट मुक्तम्।

श्रीमदाचार्येस्तन्मन्त्रध्यान श्लोके 'इन्दिरेशमित्थस्म राधिकेशमर्थ: कृतरिति (राधाकृष्ण भूषणे ८ पृष्ठे)

द्वैत मत में श्रीमध्वाचार्य मुनि ने 'हरिविरिञ्चहरेति' श्लोक की भागवत-तात्पर्य टीका में कहा है कि—'परा' और 'अपरादि' शक्तियां लक्ष्मी से अभिन्न राधिका में प्रवेश करके उन शक्तियों के सहित लक्ष्मी रूपा राधिका ही कृष्ण रूप विष्णु के साथ खेलती हैं।

भाव को गोपन रखने वाली 'श्री' लीलाशक्ति राधिका नाम सें कही गई हैं। जन पद से उसकी सखीगणों को बतलाया है।

द्वैताद्वैतामते भेदाभेद पर्याये श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाये सम्प्रदाये श्रीपाद निम्बार्क मुनिना दशश्लोक्यां कथितं यथा—

'अङ्गे तु वामे वृषभानुजां' इत्यस्य श्लोके श्रीहरिव्यासदेव निर्मित भाष्ये यथा—अथेश्वरतत्वस्यवरेण्यपदं सूचितं श्रीविशिष्टत्वमाह अङ्गेत्विति ।

अत्र वृन्दावननाथस्य कृष्णस्य वामाङ्ग स्थितया श्रीराधायास्तत्पट्टमहिषीत्वंसूच्यते--तत्र स्थितिः–'वामाङ्ग सहिता देवी राधा वृन्दावनेश्वरी ।' कृष्णोपनिषद्वचनात् । स्फुटार्थमन्यत्–एतदुक्तं भवति पुरुषवोधिन्यामथर्वोपनिषदि — श्रीगोपालोपनिषदिचास्यागान्धर्विकाभिधा याः सर्व-मुख्यत्वमुक्तं । वृहदगौतमीयेच मन्त्र कथने महालक्ष्मीत्वं कृष्णाद्वैतं च पठ्यते परा सम्मोहनीत्वं च ।

अस्याः कृष्णाद्वैतेपि विशेषाद्भेद कार्यं चास्तीति रस निष्पत्तिश्चनानुपन्नेति । मथुरायां द्वारवत्यां च या रुक्मिण्यादयस्ताश्चैतदाविर्भावा बोध्याः । एतत् सख्योऽपि वैकुण्ठ महिषी तो वरीयस्यः ।

अत्र निम्बार्क मुनेर्व्रजनाथोपासनानुष्ठेयादर्शितेति ।

ब्रह्म सत्यं जगत्सत्यं सत्यं भेदमपिव्रुवन्
निम्बार्को भगवान् विद्भिरसत्यवादी निगद्यते ।
(शक्तिशक्तिमानेभेदमित्यर्थः)

द्वैताद्वैत मत में जिसे कि भेदाभेद पर्याय से कहा जाता है, श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय में श्रीपाद निम्बार्क मुनि ने दशश्लोकी में कहा है कि–वामाङ्ग में श्रीकृष्ण के वृषभानुजा श्रीराधा विराजती हैं—इस श्लोक की व्याख्या श्रीहरिव्यासदेव जी ने अपने निर्मित भाष्य में की है कि—यहां पर ईश्वर तत्व को वरेण्य पद देकर सर्व श्रेष्ठ श्रीकृष्ण को कहा है । अब 'श्री' कौन वस्तु है ? इसे आचार्य अङ्गे तु इस पद से दिखलाते हैं—

यहां पर वृन्दावननाथ कृष्ण के वामाङ्ग में सर्वदा स्थिति होने से श्रीराधा जी श्रीकृष्ण की पट्ट महिषी हैं—यह सूचित किया है ।

वामाङ्ग में स्थिति तथा देवी श्रीराधा वृन्दावनेश्वरी का ध्यान कृष्णोपनिषद् में भी कहा है । और अर्थ स्पष्ट है । इसी का समर्थन

पुरुष बोधिनी अथर्ववेद के उपनिषद् में तथा श्रीगोपालोपनिषद में गान्धर्विका नाम देकर सब शक्तियों में मुख्य इन्हें बतलाया है–वृहद्-गौत्तमीय तन्त्र में—मन्त्र कथन में इनको 'महालक्ष्मी रूपा' श्रीकृष्ण से इनका ऐक्य है (अर्थात् यह स्वरूप-शक्ति हैं)पराशक्ति तथा सम्मोहिनी रूपा हैं यह कहा है।

इनका श्रीकृष्ण से ऐक्य होने पर भी विशेष करके भेद कहा है रस निष्पत्ति के लिए (अर्थात् भेद के विना लीला नहीं बनेगी) मथुरा और द्वारिका में रुक्मिणी प्रभृति जो प्रिया हैं वह इनका ही आविर्भाव है,इनकी सखीगण वैकुण्ठ की महिषी लक्ष्मीसे भी श्रेष्ठ हैं।

यहां पर (विराजमाना पद से) श्रीव्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र की ही उपासना करनी चाहिये यह दिखलाया।

व्रह्म भी सत्य है और जगत् भी सत्य है शक्ति और शक्ति मान में भेद भी सत्य है। अत: निम्बार्क भगवान् सत्यवादी हैं।

भेदाभेदमते पूर्वाचार्यैः यत् कथितं —'मथुरायां द्वारवत्यां च या रुक्मिण्यादयस्ताश्चैं तदाविर्भावोध्येति' तदेवं श्रीकेशवाचार्यं विरचितायां क्रमदीपिकायां श्रीरुक्मिण्यारूपा राधायाः विहारं विशनष्टि यथा—

स्वाङ्कस्थभीष्मकसुतोरु युगान्तारस्थं
संतप्त हेम रुचिरात्म कराम्बुजाभ्यां
श्लिष्यन्त माइ जघनामुपगूहमाना
मात्मानमायात लसत्कर पल्लवाभ्याम्

आनन्दोद्रेक निघ्नां मुकुलित नयनेन्दीवरां स्रस्त गात्रीं
प्रोद्यद्रोमाञ्चसांद्रश्रमजल कणिकां मौक्तिकालं क्रिताङ्गीं
आत्मन्यालीन वाह्यान्तरकरण गणामङ्गकैर्निस्तरङ्गैं
मज्जन्ती लीन नाना मतिमतुलमहानन्द सन्दोहसिन्धौ (५ पृष्ठे)

भेदाभेद मत में पूर्वाचार्य कह चुके हैं–मथुरा द्वारिका में रुक्मिणी प्रभृति श्रीराधा जी का प्रादुर्भाव हैं–उसे ही श्रीकेशव काश्मीरी जी क्रमदीपिका में श्री स्वामिनी जी का विहार स्पष्ट करते हैं कि—

स्वाङ्कस्थ भीष्मक सुता के साथ मिलन को प्राप्त आनन्द के उद्रेक में

नेत्र मुद्रित प्रस्वेद सात्विक से व्याप्त आनन्द समुद्र में लीन रुक्मिणी-रूपा राधा का हम स्मरण करते हैं।

इससे गोपालतापनी में गोपीजन वल्लभ पद से श्रीराधिका ही प्रतिपाद्य हैं—यह स्पष्ट हुआ।

श्रीमदाचार्य ने गोपाल मन्त्र के ध्यान के श्लोक में 'इन्दिरेशं' इस पद का राधिका के ईश हैं—यह अर्थ किया है।

शुद्धाद्वैतमते श्रीविष्णु स्वामी मतानुयायी पुष्टि सम्प्रदाये श्रीमद्वल्लभाचार्येन सिद्धान्त चतुश्लोक्यां प्रथम श्लोके—

'नमामि हृदयेशेषे' त्यस्य तृतीय पदे 'लक्ष्मीसहस्रे ति'— श्रीयोगि गोपेश्वर जित्कृता वुभुत्सु वोधिका टीकायां कथितं। अतः परं सर्वोपनिषदादौह्यानन्दमपि स्वरूप लक्षणे निविष्टमिति तद्रूपत्वमाहुः लक्ष्मीति—

लक्ष्मी राधारूपादावुभौ ब्रह्म सावित्र्यावंशेन जगतीं गतौ तयोर्गेहे महालक्ष्मीरिति—पाद्मे।

राधाष्टमी निरूपणे उत्सवप्रतानेऽस्ति, इयं ब्रह्मानन्दस्वरूपा। चतुर्भिश्चचतुर्भिः—इत्यत्रद्वितीय श्लोकेऽपि (२ पृष्ठे)

यथा—ननु दशमे लक्ष्मीः सर्वत्रकथम्—वृषभानुगृहे राधा-रूपास्तु। 'श्रयत इन्दिराशश्वदत्रहि' इति वाक्यमपि तत्परम स्त्विति-चेन्न। नृसिंह तापनीये—भूर्लक्ष्मीभुव लक्ष्मीः सुवः काल कर्णोतप्ता महालक्ष्मीरितिश्रुतेः। (५ पृष्ठे)

श्रीमद्विट्ठलेश्वर प्रभु चरण प्रकटित 'सेवाश्लोकेऽपि कथितं यथा—

नमस्तेऽस्तु नमो राधे श्रीकृष्णरमणप्रिये
स्वपाद पद्म रजसा सनाथं कुरु मच्छिरः।

शुद्धाद्वैत मत में श्रीविष्णु स्वामी मतानुयायी पुष्टि सम्प्रदाय में श्रीमद् वल्लभाचार्य ने सिद्धान्त चतुश्लोकी के प्रथम श्लोक 'नमामि हृदयेशेषे' इस श्लोक के तृतीय पद में 'लक्ष्मी सहस्र लीलाभिः, इस पद की व्याख्या श्रीयोगि गोपेश्वर जी कृत वुभुत्सु वोधिका टीका में की है कि—इसके उपरान्त सब उपनिषदों के आदि में आनन्द भी

स्वस्वरूप लक्षण कहकर निविष्ट किया है। उसका रूप वर्णन करते हैं कि—वह 'लक्ष्मी' 'राधा' रूपा हैं—वह दोनों ब्रह्मा और सावित्री अंश करके पृथ्वी पर प्रकट हुये। उन दोनों के यहाँ वह—महालक्ष्मी प्रकट हुई। यह पद्म पुराण में कहा है।–यह राधाष्टमी निरूपण में उत्सव प्रतान में है। यह श्रीराधा ब्रह्मानन्द स्वरूपा हैं।

'चतुर्भिश्चचतुर्भि' इस द्वितीय श्लोक की टीका में कहा है कि—क्यों जी! दशम स्कन्ध में सर्वत्र लक्ष्मी पद हैं इसे क्या जानना चाहिये–इसका समाधान यही है कि -वह वृषभानु जी के गृह में राधा रूपा हैं। 'श्रयत इन्दिरा' इस श्लोक से स्पष्ट है। यहां कृष्णलीला में सदा लक्ष्मी राधा रूपा होकर श्रीकृष्ण की सेवा करती हैं—यह यहां ही नहीं कहा है, नृसिंह तापनी में भी—भू मण्डल लक्ष्मी है भुव और स्वर्गादि लक्ष्मी ही है। काल करण मृत्यु प्रभृति महालक्ष्मी की ही शक्ति हैं–यह श्रुति में सुना जाता है।

श्री गोस्वामि विट्ठलनाथ जी के प्रकाशित सेवा-श्लोक में उन्होंने स्पष्ट विज्ञप्ति की है कि–हे श्रीराधे! श्रीकृष्ण को आनन्द देने वाली अर्थात् 'ह्लादिनी शक्ति' अपनी चरण कमल रज से मुझ दासी के मस्तक को सनाथ करो अर्थात् चरण रज देकर कृतकृत्य करो।

अचिन्त्य भेदाभेदमते माध्वगौड़ेश्वर पादानामाराध्यदेवने कलि-युग पावनावतारेण श्रीमच्छ्रीकृष्णचैतन्यदेवेन स्वसुख निर्गलित श्री-राधाष्टोत्तर-शतनाम स्तोत्रे कथितं यथा—श्रीमद्राराधारसमयीति-पराशक्तिस्वरूपाचसदानन्दमयी-कृष्णरूपिणीत्यादि।

तथाच, राधयति आराधयतीति राधा-विग्रहस्य स्पष्टी कृतं प्रेमामृत स्तोत्रे यथा–राधा सर्वस्व सम्पुटः—इति पदस्य व्याख्या श्रीमद्विट्ठलेश्वर विरचित विवरणे कृतं यथाः–

राधाया यत्सर्वस्वं तस्य सम्पुटः समुदित राधासर्वस्वरूप इत्यर्थः यद्वा-यथा कृपणः सर्वस्वं यत्किञ्चित्सुवर्णादिकं सम्पुटे धृत्वा प्राणेभ्योप्यन्तरङ्गं कृत्वा सर्वदा रक्षति क्षणमप्यदृष्ट्वा च व्याकुलो भवति तथा राधाया यत्सर्वस्वं प्राणेन्द्रियान्तःकरणं शरीर धन यौवन सौन्दर्यादिकं तत्सर्वं भगवति समर्पितमिति वाक्यार्थः।

अचिन्त्य भेदाभेद मत में माध्वगौड़ेश्वराचार्यों के आराध्यदेव कलियुग पावनावतार श्रीमद् श्रीकृष्णचैतन्यदेव ने स्वमुख निर्गलित

श्रीराधा अष्टोत्तर स्तोत्र में कहा है कि—श्रीमती राधा रसमयी हैं। पराशक्ति स्वरूपा हैं। सर्वदा आनन्दमयी हैं। कृष्णमयी हैं अर्थात् उनकी सर्वेन्द्रियों में श्रीकृष्ण विराज रहे हैं।

इसी प्रकार राध धातू का अर्थ आराधन करने वाली राधा है इस विग्रह को श्रीचैतन्यदेव ने स्पष्ट किया है। प्रेमामृत स्तोत्र में जैसे कि–'राधा सर्वस्व सम्पुटः' इस पद की व्याख्या श्रीविठ्ठलेश्वर विरचित विवरण में उन्होंने की है कि—श्रीराधा के सर्वस्व सम्पुट श्रीकृष्ण हैं अर्थात् राधा के सर्वस्वरूप हैं। अथवा, जैसे लोभी पुरुष सुवर्णादिक सर्वस्व तिजोड़ी में रखकर प्राणों के भीतर छिपा कर रखता है। धन को क्षण मात्र न देख कर व्याकुल हो जाता है। उसी प्रकार श्रीराधा ने सर्वस्व प्राणेन्द्रिय अन्तःकरण, शरीर, धन, यौवन, सौन्दर्यादि सब भगवान् को सौंप दिए हैं, यह इस वाक्य का अर्थ होता है।

श्रीमाध्वगौड़ेश्वराचार्यैः श्रीरूपगोस्वामिभि कथितं यथा—महाभावस्वरूपेयम्। तथाच, ह्लादिनीया महाशक्तिः सर्वशक्तिर्वरीयसि, तत्सार भावरूपेयमिति (उज्वले ७५-७६ पृष्ठे)

श्रीमाध्वगौड़ेश्वराचार्य श्रीमद्रूपगोस्वामीपादने 'उज्ज्वलनीलमणि' ग्रन्थ में कहा है कि-यह श्रीराधा महाभाव स्वरूपा हैं। सर्वशक्तियों में जो कि श्रेष्ठ ह्लादिनी महाशक्ति है उसको यह सार भाव-रूपा हैं।

श्रीमाध्वगौश्वराचार्यैः श्रीसनातनगोस्वामिपादैः कथितं वृहद्भागवतामृते यथा–येसर्वनैरपेक्षेण राधादास्येच्छवः परं संकीर्तियन्ति तन्नाम तादृशः प्रियतामयाः। (२ खण्ड १ अध्याय २० श्लोके) टीका च–केवलं राधायाः श्रीमन्मदनगोपालदेवस्य परम महाप्रियतमायाः दासीभावेच्छवः। तादृशी प्रियताप्रेमं तन्मया सन्तः तन्नाम कीर्तयन्तीति।

परं श्रीमत्पदाम्भोज सदासङ्गत्यपेक्षया।
नाम सङ्कीर्तन प्रायां विशुद्धाभक्तिमाचरः॥ (२-३-१४४)

टीका च केवलं श्रीमतोः पदाब्जयोः सदा विशुद्धां कर्म ज्ञानाद्यसंमिश्रांभक्तिमाचरेति।

श्रीमाध्वगौडेश्वराचार्य श्रीसनातन गोस्वामिपाद ने वृहद्

भागवतामृत में कहा है कि-जो निरपेक्ष्य होकर केवल श्रीमदनगोपाल देव की परम महाप्रियतमा श्रीराधा जी के चरणों की दासी होने की इच्छा करते हैं, उनके परिकर के प्रेम के इच्छुक हैं, उनको केवल श्रीस्वरूपा श्रीस्वामिनी जी के सहित मदनमोहनदेव के श्रीचरण कमल की विशुद्धा या कर्मज्ञानादिकों से रहित केवला भक्ति आचरण करनी चाहिये—यह बात उत्तरा ने परीक्षित से और गोपकुमार से भगवत् षार्षदों ने कही है। यहां 'श्रीमत्' और 'प्रियता'-शब्द से स्वामिनी जी का स्वरूप बतलाया है।

श्रीमाध्वगौड़ेश्वराचार्यैः श्रीरघुनाथभट्टेन-स्वसंवेद्योऽयं राधाकृष्ण लीलारसमिति किञ्चदपि न कथितमिति।

श्रीमाध्वगौड़ेश्वराचार्य श्रीरघुनाथ भट्ट जी ने, यह राधाकृष्ण लीलारस स्वसंवेद्य है, अतः कुछ नहीं कहा।

श्रीमाध्वगौड़ेश्वराचार्यैः श्रीलजीवगोस्वामिपादैः श्रीराकृष्णार्चनदीपिकायां कथितं यथाः-

अथ यत् खलु श्रीराधा सम्वलितः श्रीकृष्णोपास्यते तत्र क्वचित् शास्त्र प्रमाणकत्वं न मन्यते तत्प्रति इदं क्रमः। तत्रतावदेकस्यैव स्वरूपस्य सत्वाच्चित्वादानन्दत्वाच्च शक्तिः। शक्तिरप्येकात्रिधा-तदुक्तं विष्णु पुराणे-ह्लादिनी, सन्धिनी, सम्वित्, त्वयेका सर्व संस्थिते। तं ह्लादं वेत्तिवेदयतीति च सा ह्लादिनी-

अथैवम्भूतानन्द वृत्तिका या स्वरूपशक्तिः सा—लक्ष्मीरेवेत्याह—ईशावामांश वर्तिनी लक्ष्मीः किमाख्येति। अथ वृन्दावने तदीय स्वरूप शक्ति प्रादुर्भावाः श्रीव्रजदेव्यः। तदेवं श्रीगोपीनां स्वरूप शक्तित्वे प्रसिद्धे श्रीकृष्णस्य नित्य प्रेयसीरूपत्वं सिद्धमेव।

यथा द्वारिकायां रुक्मिण्याः एवं सर्वाधिक्यं तथा वृन्दावने-राधायाः। तथैवराधाकृष्णयोरपि 'ऋक् परिशिष्टे' श्रुत्या वर्णितं। दर्शितं च तस्या स्वरूपं 'वृहत् गौत्तमीये' वलदेवं प्रति श्रीकृष्णेन। एवं 'गोपालतापिन्या— यद्गन्धर्वीतिविश्रुता' सातुसैवज्ञेया। अतएव श्रीराधा सम्वलित दामोदर पूजा पाद्मे कार्तिके विहिता—'मयासह' अत्र मा शब्द प्रयोगस्तस्याः परमलक्ष्मी रूपत्वात्। तथा तत्रैव—गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे। इति साक्षान्नामोक्तमिति।

श्रीमाध्व गौड़ेश्वराचार्य श्रील जीवगोस्वामीपाद राधाकृष्णा-चंनदीपिका में कहते हैं कि—स्वामिनी राधिका के सहित श्रीकृष्ण-की जो उपासना है, उस उपासना को जो शास्त्र सम्मत नहीं मानते, उनके लिए यह शास्त्र प्रमाण का क्रम है। वह भगवत्तत्व एक ही होने पर भी सत्, चित्, आनन्द यह तीन शक्तियां धारण करता है। विष्णु पुराण में लिखा है कि—ह्लादिनी, सन्धिनी, सम्वित् ये तीन शक्तियां भगवान् की हैं।

उन में आनन्द क्या वस्तु है, जो यह जानती हैं और आनन्द का ज्ञान कराती हैं, वह ह्लादिनी है।

उस ह्लादिनी का अनन्त रूप होने से उसे 'स्वरूप-शक्ति' नाम से कहा गया है। वह लक्ष्मी ही है। ईश्वर के वाम भाग में बिराजने वाली वह लक्ष्मी कैसी है ?—कहना होगा, वह वृन्दावन में श्रीकृष्ण की स्वरूप शक्ति का प्रादुर्भाव श्रीव्रजदेवी हैं। जबकि वह गोपीगण स्वरूप-शक्ति नाम से प्रसिद्ध हैं तो श्रीकृष्ण की नित्य प्रेयसी होना स्वतः सिद्ध है। जैसे द्वारिका में श्रीरुक्मिणी की सबमें प्रधानता है उसी प्रकार श्रीवृन्दावन में श्रीराधा जी की। इसी प्रकार श्रीराधा-कृष्ण का भी ऋक्वेद की परिशिष्ट श्रुति में वर्णित है कि श्रीराधिका जी का स्वरूप वलदेव जी को श्रीकृष्ण ने वृहत् गौत्तमीय तन्त्र में दिखलाया है।

इसी पकार गोपालतापनी उपनिषद् में 'यद्गान्धर्वीतिविश्रुता' कहा है। वह गान्धर्विका श्रीराधा ही हैं। इससे श्रीराधा जी के सहित दामोदर की पूजा–पद्म पुराण में कार्तिक में विहित है। कार्तिक मास के महात्म्य में 'मयासह' इस शब्द में मा शब्द का प्रयोग श्रीराधिका जी को ही परम लक्ष्मी रूप से वर्णन करता है तथा वहीं पर 'राधिका के सहित, हे हरि ! मेरे दिये अर्घ्य को ग्रहण करिये।' यहां स्पष्ट श्रीराधिका जी का नाम कहा है।

श्रीमाध्वगौड़ेश्वराचार्यैः श्रीगोपाल भट्टेन हरिभक्तिविलासे कार्तिक मास कृत्ये बहुलाष्टम्यां पद्मपुराण वचनं 'यथाराधेति' किञ्च तत्रैव श्रीराधिकोपाख्यानान्ते कथितं यथाः—

वृन्दावनाधिपत्यं च दत्तं प्रतुष्यता।

कृष्णेनान्यत्र देवी तु राधा वृन्दावने वने॥

टीका च—तस्याः तस्यैः श्रीराधायैः। अन्यत्र वृन्दावनेतर स्थाने सा देवी लक्ष्म्यादिरूपा वृन्दावनाख्ये च वने राधैव स्वयं स्व-नामादिनैव प्रसिद्धेत्यर्थः।

श्रीमाध्वगौड़ेश्वराचार्य श्रीपाद गोपाल भट्ट जी ने हरिभक्ति विलास में कार्तिक मास कृत्य में बहुलाष्टमी में राधाकुण्ड के स्नान की प्रशस्तता पद्म पुराण के वचनों से कही है—वहीं पर श्री-राधिकोपाख्यान के अन्त में कहा है कि–"उन श्रीराधा जी को वृन्दावन का आधिपत्य श्रीकृष्ण ने दिया है। अन्यत्र वृन्दावन से इतर स्थान (महावैकुण्ठ) में वह देवी लक्ष्म्यादि रूप से विराजमान हैं। वृन्दावनाख्य वन में श्रीराधा स्वनाम से प्रसिद्ध हैं।

श्रीमाध्वगौड़ेश्वराचार्यैः श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामिना स्तवावल्यां राधिका प्रेमाम्भोज मरन्दाख्ये स्तोत्रे। महाभावोज्ज्वल-चिन्तारत्नोद्भावितविग्रहां, तथा च—महाभाव स्वरूपेऽयमिति राधा सर्वाङ्ग रूपं वर्णितमेव।

श्रीमाध्वगौड़ेश्वराचार्य श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामी जी ने 'स्तवावली' प्रभृति ग्रन्थों में, राधिका जी का उज्वलरस महाभाव-स्वरूप ही श्रीविग्रह है,–इस प्रकार सर्वाङ्गरूप वर्णन किया है।

श्रीमाध्वगौड़ेश्वराचार्य श्रीपाद बलदेव विद्याभूषणेन गोविन्द-भाष्यस्य 'सिद्धान्त रत्ने' वर्णितं राधा तत्वम् यथा—

श्रीकृष्णो हि राधाद्या पूर्णाः शक्तयः सर्वातिशायीत्यादिना। २ पादे २२ अनुच्छेदे।

गौत्तमीये तन्त्रे चैव स्मर्यते इत्यादि। २३ अनुच्छेदे। तदेवं महा-लक्ष्मीत्वादेव श्रीराधायाः पूर्णात्वमित्यादि। २ पादे २५ अनुच्छेदे।

तां वां वास्तुन्युश्नषिगमध्यै यत्र गावो–इति। २ पादे ३१ अनुच्छेदे। पंक्तौ।

श्रीमाध्वगौड़ेश्वर श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण ने गोविन्द भाष्य के सिद्धान्त रत्न ग्रन्थ में राधातत्व वर्णन किया है कि–निश्चय श्री-कृष्ण की राधा आदि अतिशायी पूर्णा शक्ति हैं, इत्यादि।

गौतमीय तन्त्र में भी इनका स्मरण बतलाया है। इसके महा-लक्ष्मीत्व होने से श्रीराधा जी को पूर्णा शक्ति कहा गया है।

श्रीमाध्वगौड़ेश्वर श्रीपाद विश्वनाथ चक्रवर्तिना रागवर्त्म-चन्द्रिकायां कथितं, यथा—यद्यपि श्रीराधिका श्रीकृष्णस्य स्वरूपभूता ह्लादिनी शक्तिः तस्यां अपि श्रीकृष्णः स्वीय एव तदपि तयोर्लीला सहितयोरेवोपास्यत्वमिति ।

श्रीमाध्वगौड़ेश्वर श्रीपाद विश्वनाथ चक्रवर्ति ने रागवर्त्म-चन्द्रिका में कहा है कि—यद्यपि श्रीराधिका श्रीकृष्ण की स्वरूपभूता ह्लादिनी शक्ति हैं, श्रीराधा जी के श्रीकृष्ण स्वीय ही हैं, तो भी उन दोनों की लीला के सहित आराधना करनी चाहिये ।

तथाहि प्रमेयरत्नावल्यां माध्वगौड़ेश्वर श्रीबलदेव विद्या-भूषणस्य केशिचच्छिष्येण कथितं यथा—

अथ श्रियस्तद्यथा—पुरुष बोधिन्यामथर्वोपनिषदि, गोकुलाख्ये माथुरमण्डले—इत्युपक्रम्यद्वे पार्श्वे चन्द्रावली राधिका चेत्यभिधाय परत्वयस्यां अंशे लक्ष्मी दुर्गादिका शक्तिरिति । गौतमीये तन्त्रे च—

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका पर देवता ।
सर्व लक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः सम्मोहिनी परेति (१ प्रमेये पृ० १०)

इसी प्रकार प्रमेय-रत्नावली में माध्वगौड़ेश्वर श्रीबलदेव विद्याभूषण जी के किसी शिष्य ने कहा है कि—अब हम श्रीशक्ति के विषय में लिखते हैं, जैसा कि पुरुष बोधिनी में, अथर्व उपनिषद् में लिखा है कि—माथुर मण्डल में जिसका नाम गोकुल है, उसमें प्रारम्भ करते हुए पहले दोनों ओर चन्द्रावली और राधिका विराजमान करके इन तीनों के आगे मण्डल में लक्ष्मी दुर्गादि शक्तियों की स्थापना करें ।

गौतमीय तन्त्र में भी कहा गया है कि—श्रीराधिकादेवी कृष्ण-मयी हैं, सर्वश्रेष्ठ सर्व लक्ष्मी रूपा, सर्व कान्तिमयी सम्मोहिनी परा शक्ति हैं ।

श्रीमाध्वगौड़ेश्वर रसिकाचार्य श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती विरचिता गोपालतापिन्योत्तर तापिन्यां कृष्णवल्लभाटीकायामाह—

कृष्णात्मिका जगत् कर्त्री मूल प्रकृति रुक्मिणीति—

यस्मिन् सदानन्दात्मक कृष्ण-शक्ति रूपत्वात् शक्ति-मतोरभेदात् कृष्ण स्वरूपा जगत्कर्त्री मूल प्रकृति शास्त्रेति शेष

ब्रजस्त्री श्रीराधारूपिणी तत्र सा रुक्मिणी प्रकृष्ट तद्रूपत्वात् प्रकृति-रिति। (६० पृष्ठे)

श्रीमाध्वगौड़ेश्वर रसिकाचार्य श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती विरचित गोपाल तापनी-उत्तर तापनी की कृष्णवल्लभा टीका में कहा गया है—

जबकि सर्वदा आनन्द स्वरूप श्रीकृष्ण की शक्ति रूप होने से शक्ति और शक्तिमान में अभेद होने से श्रीराधा श्रीकृष्ण की स्वरूपा शक्ति हैं इसी से जगत् को जन्माने वाली मूल प्रकृति कहो गयी है वही श्रीराधा श्रीरुक्मिणी हैं प्रकृष्ट उन्हीं का रूप होने से उन्हें प्रकृति कहा है।

श्रीमाध्वगौड़ेश्वर व्रजाचार्य श्रीमन्नारायण भट्टेन भक्तिरस तरङ्गिण्यां लिखितं यथा–अत्र भक्तेषु राधव परमावधिरिष्यते। यतः प्रभुत्वं राधायाः श्रीकृष्णास्याङ्गतामता। त्रैलोक्य-सम्मोहन तन्त्रेऽपि यथा–'आनन्द रूपिणी शक्तिस्त्वमीश्वरि न संशयेति।' लक्ष्मी सरस्वतीति।

एतैर्वाक्यैः श्रीराधाया अंशित्वमेव निर्णयात्। ततश्च श्री-नारायणादीनामवतारत्वे निश्चिते'आद्योवतारपुरुष परस्येति' कथनात् श्रीकृष्णस्य चावतारित्वे कृष्णस्तु भगवान् स्वयमिति कथनात्-तद्-भोग्यायाः श्रीराधायाश्चावतारित्वमर्थशास्त्राभ्यां निर्णीतमिति (१४८-१८१ पृष्ठे)

श्रीमाध्वगौड़ेश्वर व्रजाचार्य श्रीमन्नारायण भट्ट जी ने भक्ति-रस तरङ्गिणी ग्रन्थ में लिखा है कि—भागवत धर्म में श्रीराधिका में ही उपासकों की परमावधि है। श्रीराधा जी की श्रेष्ठता श्रीकृष्ण का अङ्ग होने से है। त्रैलोक्य सम्मोहन तन्त्र में कहा है कि—आनन्द-रूपिणी शक्ति हे ईश्वरी ! तुम हो, लक्ष्मी सरस्वती प्रभृति तुम ही हो। इन सब वाक्यों से श्रीराधा जी का अंशित्व निर्णय किया है। जबकि नारायणादि 'अवतार' हैं—अवतार प्रकरण में श्रीकृष्ण का आदि अवतार श्रीनारायण हैं—ऐसा श्रीमद्भागवत प्रथम स्कन्ध में कहा है—श्रीकृष्ण को अवतारी निणय किया है कि—श्रीकृष्ण तो भगवान् स्वयं हैं। अतः उनकी भोग्या श्रीराधा सर्वावतारिणी हैं, यह अर्थ शास्त्र से स्वयं निर्णय हो रहा है।

माध्वगौड़ेश्वर अनन्य रसिक शिरोमणि गोस्वामि श्रीहरिराम-व्यासेन नवरत्न ग्रन्थे कथितं यथा—

परात्मिका पराशक्तिर्या श्रुत्यादिषु पठ्यते ।
ह्लादिन्यादि स्वरूपा सा राधिकेति विदुर्बुधाः ॥ (१४ श्लो०)

माध्वगौड़ेश्वर अनन्य रसिक शिरोमणि गोस्वामी श्रीहरिराम व्यास जी के नवरत्न-ग्रन्थ में कहा गया है कि—जो परात्मिका, पराशक्ति श्रुतियों में निरूपण की गई है, तत्ववेत्ता उसे ह्लादिनी स्वरूपा श्रीस्वामिनी राधिका ही बतलाते हैं ।

शुक सम्प्रदाये चरणदासीये सिद्धान्त चन्द्रिकायां श्रीराधातत्वं यथा—

वामाङ्गे संस्थितादेवी राधा वृन्दावनेश्वरी । कृष्णोपनिषदि । यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानय विष्णवेददाशतियोजातमस्य महतो महिम्रवत्सेदु श्रवोभियुज्यं चिदभ्यसत् । ऋग्वेद-मण्डल १सु १५६ मन्त्र २ । परास्य शक्तिर्विविधैवश्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान क्रिया बलेति तासु ह्लादिनी गरीयसि ।—(श्रुति)

स्वयमेव समाराधन करोति यतः स्वयमेव माधवो तस्मात् लोके वेदे श्रीराधा गीयते स्वाधीनतया एक रूपं द्विधा विधाय रमया-ञ्चकार तस्मात् राधाकृष्ण रूपमैक्यं सर्वतः इत्यादि(आपस्तम्वशाखि)

तस्माज्ज्योतिरभूद् द्वेधा राधामाधवरूपकम् (सम्मोहन तन्त्र गोपाल सहस्रनामे)

वैष्णव शास्त्रे राधिकायां—'गोविन्द हृदयोद्भवा' कथित-मिति ।— १३७ पृष्ठतः १४१ पृष्ठ पर्यन्तम् ।

श्रीराधावल्लभीय सम्प्रदाये यथा—

पूर्णानुरागरससागर सारमूर्तिः सा राधिका ।---राधारससुधानिधौ १० श्लोके ७ पृष्ठे । पूर्णानुरागरससागरस्य श्रीकृष्णस्य सारमूर्ति श्रीराधेति । अथवा—पूर्णोयोनुरागः स्नेहस्तस्य यो रसः स सागर रूपो विस्तृतत्वात् तस्य सारमूर्तिः आधिदैविकी या सा ।—श्रीकृपालाल विरचित टीकायां । ८ पृष्ठे । राधामाधवयोः सदैव भजतः इति ।— राधारससुधानिधौ ५६ श्लोके ३९ पृष्ठे ।

अत्र लक्ष्म्या मा पद प्रयोगेणाधिभौतिकी सा प्रोच्यते-यद्वा

श्रीराधायाः लक्ष्मीत्वमुच्यते-बृहद् गौतमीयात्-देवीकृष्णमयीति एतद-भिप्रायेण मा पदेन श्रीराधैवोच्यते । श्रीकृपालाल गोस्वामि विरचित टीकायां । ४० पृष्ठे ।

श्रीशुक सम्प्रदाय में श्रीचरणदास जी ने 'सिद्धान्त चन्द्रिका' में श्रीराधा-तत्व कहा है कि श्रीकृष्ण के वामाङ्गमें श्रीराधा जी की सदा स्थिति है—ऐसा कृष्णोपनिषद् में भी कहा है । ऋग्वेद मन्त्र में—तुलसी अर्पण की बहुत महिमा है । परा शक्ति बहुत प्रकार की है—स्वाभाविकी ज्ञान, बल क्रिया रूपा । स्वयं माधव समाधान करते हैं । इसी से जगत् में राधा कही गई हैं । वह कृष्ण-एकरूप होकर भी दो विग्रह धारण कर विहार करते हैं । अतः राधाकृष्ण रूप एक ही हैं—(यह आपस्तम्ब शाखा में लिखा है) इसीलिए वह एक ज्योति होकर भी राधामाधव दो रूपों से प्रकट हुए हैं ।—(यह सम्मोहन तन्त्र गोपाल सहस्रनाम में लिखा है) वैष्णव शास्त्र में श्रीराधिका को गोविन्द के हृदय से प्रकट हुई कहा है ।

श्रीरसिक सम्प्रदाये श्रीराधावल्लभीय सम्प्रदाय में—श्रीराधा-रससुधानिधि का प्रमाण देकर कहा है कि—पूर्वानुराग रस सागर सार मूर्त्ति श्रीस्वामिनी जी राधा हैं । अर्थात् पूर्वानुराग रस समुद्र के सागर श्रीकृष्ण की सारभूत मूर्ति श्रीराधा जी हैं ।

इस पद की टीका श्रीकृपालाल जी गोस्वामी ने की है कि—जो पूर्ण अनुराग है, वही समुद्र रूप से विस्तृत हुआ है उस स्नेह रस सागर की आधिदैविकी मूर्ति हैं—श्रीराधा जी ।

आगे राधारससुधानिधि जी के श्लोक का प्रमाण दिया है कि—'राधामाधवयोस्सदैवभजतः,—इस पद की टीका श्रीकृपालाल जी गोस्वामी करते हैं कि—यहां पर 'मा' लक्ष्मी शब्द का प्रयोग देकर ग्रन्थकार ने श्रीराधा जी आधिभौतिकी शक्ति हैं—यह कहा है । अथवा श्रीराधा को लक्ष्मी का रूप कहा है । वृहद्गौतमीयतन्त्र में भी श्रीराधादेवी को कृष्णमयी रूप से वर्णन किया है । अतः इस अभिप्राय से यहां पर 'मा' पद से श्रीस्वामिनी जी श्रीराधा को ही जानना चाहिये ।

तात्पर्यार्थो यथसच्चिदानन्दमूर्त्तः कृष्णः । श्रीराधा तस्य प्रणय

विकारः। सा स्वरूपशक्तिर्ह्लादिनी। येन कृष्णोह्लादयते। सैव भक्तिर्नाम्ना ज्ञायते। सदंशेसन्धिनी—चिदंशे सम्वित् धाम परिकरादयः। ब्रह्म परमात्म भगवत्तादिक यस्य स्वरूपं आनन्दांशे ह्लादिनी सारः प्रेम। प्रेम सारो भावः। भावस्य पराकाष्ठा महाभाव। महाभाव स्वरूपा श्रीराधेति। सैव--पराशक्तिः स्वात्मक ह्लादिनी सार समवेत सम्विद्रूप युवातिरत्नत्वेन स्फुरन्ती श्रीराधा संज्ञामिति।

यथा सर्वावतारी कृष्णः तथैव श्रीराधा सर्वशक्त्यवतारणी। राधा पूर्णाशक्तिर्कृष्णः पूर्ण शक्तिमान् लीलास्वादनार्थं द्वे रूपे- धारयतेति।

अतः स्वामिन्या श्रीहस्ते विराजितः श्रीलीलाशुकोपि शुकदेवो भूत्वा श्रीभागवती संहितायामारम्भ काले महर्षि व्यासदेव नमस्कारात्मक मङ्गलमारभते यथा—

नमोनमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां विदूरकाष्ठायमुहुः कुयोगिनां।
निरस्त साम्यातिशयने राधसा स्वधामनिब्रह्मणिरंस्यते नमः॥
भा० २-४-१४

सात्वतां यादवानां गोपानां मध्ये ऋषभाय श्रेष्ठाय। अत्र सात्वत शब्दवाच्य गोपाः--विष्णु पुराणे कथितं-यादवानांहितार्थाय धृतो गोवर्द्धनो मया। श्रीनन्दनन्दनायेत्यर्थः। ते तुभ्यं मुहुः वारंवार मित्यादरेवप्सि नमो नमः। अस्तु। ननु कथं कुयोगिनाम्—भक्ति हीनानां कालियादीनां विदूरा काष्ठादिगपि यस्य—दुर्विज्ञायेत्यर्थः।

स्वधामनि-स्व-धनरूपंधाम्नि निभृतनिकुञ्जमन्दिरेत्यर्थः। निरस्तसाम्यातिशयने प्रेम्णेत्यर्थः। अथवा---निरस्तं साम्तं च अतिशयं च यस्य तने निरस्त साम्यातिशयेन। अथवा--जन्माद्यस्ययतेत्यत्राद्यस्य शृङ्गाररसस्य यतः राधिकया जन्म प्रादुर्भावं-रसस्योत्कृष्ट धर्म-विशिष्टत्वात् कृष्णेन सह निरस्तं साम्यं-शक्तिमानस्य शक्तिधर्म विशिष्टत्वात् निरस्तमतिशयं च तने।

राधसेत्यत्र कथनं भाव संगोपनेन—राधयेत्यर्थः। अर्थस्तु शब्दद्वयोरेकैव—राधधातोः—सर्वधातुभ्योसनुणादिसूत्र द्वारा—अस् भवति तृतीयायामेकवचने राधसा वचनो भवति—राधा शब्दस्यपि तृतीयायां राधया भवतीत्यर्थकैवेति।

'सुबोधिन्यापि'—निरस्त शाम्यातिशयने राधसेति वल्लभाचार्येन कथितं यथा—क्वचित् भगवतः सिद्धिरस्ति राधस् शब्द वाच्या न तादृशी सिद्धिः क्वचिदनन्यत्र न वा ततोप्यधिका तया सिद्धया भगवान् स्वगृह एव रमते न त्वाक्षरात्मकं ब्रह्मरंस्यतीति—एतावता स्वरूपस्थिति व्यतिरेकेण नान्यत्र रंस्यतीति भगवदीयो रसस्तत्रैव प्राप्तव्यः। अतएव सुष्ट्वाहान्याचार्यैः स्वरूपशक्तिराधेति। यः ब्रह्मणि गौर श्याम स्वरूपौ एकीभूय रंस्यते रममाणाय नमः इति।

अग्रे जगद्गुरुर्ब्रह्माऽपि व्यास द्वारा वक्षमाणत्वात्—'प्रिया प्रियस्य प्रतिरूढ मूर्तयः। असावहंस्वित्यवला स्तदात्मिका' कृष्णान्वेषण लीलां स्मृत्वा तां (राधा) स्तौति—

> नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तड़िदम्बराय
> गुञ्जावतंस परिपिच्छ लसन्मुखाय।
> वन्यस्रजे कवल वेत्र विशाण वेणुर्लक्ष्म-
> श्रिये मृदु पदे पशुपाङ्गजाय।
>
> भा० १०-१४-१

पशुपाङ्गजायेति—पशून् पातीति पशुपः श्रीवृषभानुस्तस्याङ्गजा श्रीराधेत्यर्थः। तस्यैरानन्ददातृ शक्त्यैः—अहं नौमि। आयेति आगच्छेति—हृदि प्रविश्य लीलां प्रादुर्भाविय। अथवा—पशून् पातीति पशुपः गोपः श्रीनन्दः तस्याङ्गजः श्रीकृष्णः तस्या ह्लादनशक्तिर्राधेति—तस्यै सहिताय राधाकृष्णाय नौमि। या प्रिया प्रियस्य प्रतिरूढ़ मूर्तयोः बभूवेति लीलां स्मृत्वाभ्रवयुषत्व मतेवाहाभ्रवपुषे स्वयमङ्गकान्त्या तड़िदम्बरोपि तड़िदिवतस्मै दड़िदम्बराय गुञ्जावतंसं उपरि पिच्छस्य नीलवर्णत्व प्रितमस्याभां दृष्ट्वा लसन्मुखाय वन्यस्रजे कवलमभिसार काले यस्यां रास लीलायां वक्षमाणत्वात् 'अष्णन्त्योपास्य भोजनमिति' वेत्र विशाण वेणुधारणं कृष्णोऽहं पश्यत गतिं ललितामिति तन्मनेति' वक्ष्यमाणत्वात् 'तां'। पुनः कथं भूता सा 'लक्ष्माश्रिये' लक्ष्मं चिन्हं श्रीभूलीलेति तस्यैः श्रियस्वरूपिण्यै स्वरूप शक्त्यैःआनन्दस्वरूपाय च तस्मैः तुभ्यं राधामाधवाय नौमीति।

परम कृपालु श्रीपाद जीव गोस्वामी श्रीमद्भागवत महापुराण

की क्रम सन्दर्भ टीका में—श्रीराधा तत्व परक व्याख्या भी करते हैं—ऋग्वेद की परिशिष्ट श्रुति में कहा है कि—श्रीराधा से माधव एवं माधव से दीप्यमान श्रीराधिका हैं, यह दोनों दोनों के द्वारा विभ्राजमान हैं।

यह शास्त्र का सिद्धान्त जानकर सर्व मूर्धन्य 'जन्माद्यस्य' इस श्लोक में–श्रीस्वामिनो राधिका परक व्याख्या भी आस्वादन में आती है यथा--नायक शिरोमणि श्रीकृष्ण सर्वदा निज परमानन्द शक्ति रूपा श्रीराधा का अनुगमन करते हुए उनमें आसक्त होते हैं। तथा इतर द्वितीया श्रीराधा के द्वारा आदि रस शृङ्गार रस का जन्म या प्रादुर्भाव है, जो कि आदि रस विद्या की परम निधान हैं(आश्रय तत्व होने से)अतएव उन दोनों नायक नायिका का अद्‌भुत विलास उत्कृष्ट माधुरी प्रकट करता है।

जो कि अर्थों में अर्थात् तत्तद्विलास कलाप में विदग्ध हैं, जो श्रीकृष्ण श्रीराधिका-आत्मा के अपने स्वरूप में ही विलास कर रहे हैं, इसी से उन्हें 'स्वराट्' कहा है।

अतएव सबसे आश्चर्य देने वाले उन गौर श्याम के रूप के वर्णन में मुझ पर उनकी कृपा ही सामिग्री है, यह स्मरण कर श्रीव्यासदेव कहते हैं कि—

प्रथम लीला के वर्णन प्रारम्भ करने वाले मुझ आदि कवि वेद व्यास के अन्तःकरण में निज लीला प्रतिपादक शब्द ब्रह्म को जिन्होंने विस्तार किया है अर्थात् समस्त महापुराण मेरे हृदय में प्रकाशित किया है।

जिस लीला के समझने में, जिस राधा-नाम के जानने में ब्रह्मादिक भी विमोह को प्राप्त होते हैं, वह श्रीस्वामिनी यदि कृपावलोकन नहीं करतीं तो क्या माधव की कृपा होने पर भी मेरे हृदय में उस रासलीला काल में अन्तर्धान होने के बाद-चरण चिह्न व श्रीकिशोरी जी के पद चिह्नों की एवं उस निभृत लीला विहार की स्फूर्ति तथा उन लीलाओं के लेश मात्र वर्णन करने का साहस हो सकता ?

जिनकी नखचन्द्र कान्ति के सम्मुख चन्द्र का निस्तेज होना,

वंशीनाद से चन्द्रकान्त मणि में वारि का प्रादुर्भाव, पाषाण का मृदु हो जाना विपर्यय भाव हो जाता है।

जिन श्रीकिशोरी जी के सान्निध्य में श्री, भू, लीलाशक्ति का प्रादुर्भाव तथा द्वारिका, मथुरा वृन्दावनादि स्थानों का प्रादुर्भाव, रस व्यवहार में सुहृद, उदासीन, प्रतिपक्ष नायिका त्रय का भेद, व्रज-गोपियों का प्राकट्य मिथ्या अर्थात् झूठा हो जाता है। जिन श्री-स्वामिनी जी की सौन्दर्य गुण सम्पदा के सन्मुख नायिकाओं की स्थिति श्रीकृष्णचन्द्र के सान्निध्य में कोई मूल्य नहीं रखती। यहां पर 'धीमहि' पद परस्पर में प्रिया-प्रियतम में अभिन्नता दिखलाता है।

वह दोनों कैसे हैं ? यह दिखलाते हैं कि—जो अपनें प्रभाव से सदा अपनी लीला में प्रतिबन्धक कुहक माया का अभाव कर रहे हैं। और जो कि सत्य है यानी नित्य सिद्ध हैं इसी से 'पर' शब्द दिया—अन्यत्र ऐसी विश्व विस्मायक लीला नहीं देखी जाती अतः सबसे उत्कृष्ट हैं।

इस सब तत्व के कथन से यह दिखलाया कि—सबसे उत्कृष्ट आनन्द को भी चमत्कारदेने वाले श्रीवृन्दावन को भी परमाद्भुत प्रकाश देने वाले श्रीराधा युगलित श्रीकृष्ण हैं।

इसी से वैष्णवाचार्यों ने सुन्दर तात्पर्यार्थ कहा है—सच्चिदा-नन्द पूर्ण स्वयं स्वरूप श्रीकृष्ण हैं। श्रीराधा उनका प्रणय विकार है। वह स्वरूप-शक्ति ह्लादिनी है, जिसके द्वारा श्रीकृष्ण आनन्दित होते हैं। उसे ही भागवत शास्त्र में भक्ति नाम से कहा जाता है। सत् अंश में वह सन्धिनी नाम से कही जाती है जिसका स्वरूप ब्रह्म परमात्मा भगवान् है। उसी का चित् अंश में सम्वित् नाम है, जिसका स्वरूप धाम परिकरादिक है। वही आनन्दांश में ह्लादिनी नाम से विख्यात् है। ह्लादिनी का सार 'प्रेम' है—प्रेम का सार भाव है भाव को पराकाष्ठा महाभाव है और महाभाव स्वरूपा हैं श्रीराधा।

जैसे कि—श्रीकृष्ण सर्वावतारी हैं, उसी प्रकार सब शक्तियों का अवतार धारण करने वाली श्रीराधा हैं। श्रीराधा पूर्ण शक्ति हैं। श्रीकृष्ण पूर्ण शक्तिमान हैं। लीला आस्वादन के लिए दो स्वरूप

होकर विराजमान हैं। इस प्रकार श्रीभागवती संहिता के प्रथम मूर्धन्य श्लोक से श्रीराधा तत्व की व्याख्या हुई है। अतः श्रीस्वामिनी जी के श्रीहस्त पर विराजित लीला शुक श्रीशुकदेव मुनि होकर श्री-भागवती संहिता के प्रारम्भ काल में श्रीमहर्षि वेदव्यास ही की तरह नमस्कारात्मक मङ्गला चरण करते हैं कि—'सात्वत' यादव नाम से प्रसिद्ध गोपों के मध्य में श्रेष्ठ श्रीनन्दनन्दन की हम वन्दना करते हैं। वह भी 'बारम्बार' यहां आदर सूचक है। यहां 'सात्वत' शब्द का वाच्य गोपों को ही जानना चाहिए। विष्णु पुराण में कहा है—

यादवों के हित के लिए मैंने गोवर्द्धन धारण किया था, भक्ति हीन कुयोगी कालिय नाग के समान पुरुषों के लिए जिसकी दिशा भी जानना दुर्ग्येय है। 'स्व'धन रूप धाम निकुञ्ज मन्दिर में छोटा बड़ापना दूर हो गया है। उस प्रेम के वश 'श्रीराधिका' के साथ 'ब्रह्म' रूप होकर अर्थात् गौरश्याम स्वरूप एक होकर खेल रहा है।

अथवा—प्रियातत्व रस की आश्रय हैं अतएव शृङ्गार रस का उन्हीं के द्वारा प्रादुर्भाव है। इस से दूर होगयी 'समानता' जिन श्री-राधा में, और शक्तिमान की ही शक्ति होने से दूर होगयी 'उत्कृष्टता' श्रीराधाजी में। वे दोनों दोनों के आश्रय-विषयालम्बन हैं।

यहां श्रीशुकदेव जी का 'राधस' शब्द कहना भाव संगोपन के लिए ही है। 'राधसा' दोनों पदों का एक ही अर्थ है।

'सुवोधिनीकार' का भी 'राधाजी' के बिना अक्षर ब्रह्म के साथ तथा अन्यत्र विहार नहीं बनता। अतः और आचार्यों का और इनका भी तात्पर्य 'स्वरूप शक्ति' श्रीराधा से है।

आगे जगद्गुरु 'ब्रह्मा' भी व्यास जी द्वारा वक्षमाण वचन का स्मरण कर कि—'श्रीकृष्ण विरह में प्रिया प्रियतम होकर कहती हैं— "कृष्ण मैं ही हूँ।" कृष्णान्वेषण लीला का ध्यान करते हुए उन श्री राधिका ही की वन्दना कृष्ण स्वरूप में करते हैं कि उन श्रीराधा को श्रीकृष्ण के सहित हम प्रणाम करते हैं, जो कि गौओं के रक्षक श्री-वृषभानु गोप की कन्या हैं, उस आनन्द दातृ शक्ति को हम नमन करते हैं, जोकि हृदय रूपी मन्दिर में प्रवेश कर लीला का प्रादुर्भाव कर रही हैं।

अथवा—गौओं के पालक श्रीनन्द के पुत्र श्रीकृष्ण को आह्लाद देने वाली शक्ति श्रीराधा के सहित अर्थात् श्रीश्रीराधा-कृष्ण को हम प्रणाम करते हैं।

प्रियतम के रूप की भावना करते करते जो प्रिया घनश्यामवपु हो गयी हैं, स्वयं विजली के समान कान्ति वाली होकर भी भाव की गाढ़ता में पीताम्बर धारण किये हुए हैं, जिन के कण्ठ में गुञ्जा की माला शोभित है, प्रियतम के नील वर्ण का स्मरण कराने वाले मयूर पिच्छ को धारण किये हुये हैं—जिन्होंने वनमाली की तरह वनमाला धारणकी है-'रास लीलामें अभिसार कालमें भोजन त्याग कर श्रीकृष्ण के साथ मिलने को जो प्रिया दौड़ पड़ती हैं''—इत्यादि इन वक्षमाण वचनों को स्मरण कर श्रीब्रह्मा जी कहते हैं कि जिनके श्रीमुख में 'ग्रास' सुशोभित है, वेत्र-विषाण-वेणु धारण कर रखा है, इसलिए कि मैं ही कृष्ण हूँ, मेरी ललितगति देखिये।

फिर वह 'श्रीराधा' कैसी हैं जिनका 'श्री' भू-लीला (चिह्न) स्वरूप शक्ति का द्योतक है। उस आनन्द स्वरूपिणी श्रीराधा सहित माधव अर्थात्—श्रीराधामाधव को हम सतत प्रणाम करते हैं।

एवं प्रकारेण वस्तु निर्देशात्मकं नमस्कारात्मकं 'श्रीराधापरत्वं मङ्गलाचरणं कृत्वा 'श्रीशुकः दशमे नन्दराजकुमारस्य जन्मलीलां वर्णयित्वानुसङ्गेन श्रीवृषभानुनन्दिन्यापि जन्म लीलां 'रमा' पद द्वारावर्णयति यथा—

तत आरभ्य नन्दस्य ब्रजः सर्वसमृद्धिमान् ।
हरेर्निवासात्मगुणैः रमा क्रीड़मभून्नृप ॥

—भा० १०-५-१८

तत 'आं' राधां जन्मारभ्य। 'अकारो वासुदेवस्यादीति कथनात्' सत्वं विशुद्धं वसुदेव शब्दितमिति कथनाच्च तस्य विशुद्धात्मिका शक्तिः'श्रीराधेति। सर्वं समृद्धिमान् 'नन्दयति' आनन्दयतीति 'विशेषण विशिष्टत्वात् श्रीवृषभानोः' इत्यर्थः। ब्रजः; श्रीवृषभानोः सान्निध्ये गच्छेत्यर्थः। किमर्थं तत्राह–हरेर्निवासात्मत्वात् गुणैः कृष्णं रमयतीति रमा राधा तस्याक्रीड़स्थानं ब्रजमभूत।

हे नृप ! इत्युत्कण्ठितावस्थायां श्रीशुकस्य सम्बोधनोक्तिः। अष्टादशसहस्र संहितायां सारभूतोऽयमष्टादशमो श्लोकेति।

अथवा—नन्दस्य व्रजस्तु सर्व समृद्धिमानेव—तत् आरभ्य 'कृष्ण-जन्मादारभ्य' हरेः—श्रीकृष्णस्य परम रमारूपाणां व्रजदेवीनां परम रमायाः 'श्री राधायाश्च' तदानीमेवाविर्भावाद्विहार स्थानमपि वभूवेत्यर्थः। इति तोषिणी। (तदेवं प्रसङ्गतः श्रीव्रजदेवीनामपि भगवद्वत् प्राकट्य मात्र जन्म सूचितं रमाक्रीड़ शब्देन च सर्व समृद्धि-मत्वे वाच्ये पौनरुक्त्यंस्या तदेव)

रमयतीति रमा 'राधा' तस्याक्रीड़ स्थानं व्रज मभूदित्यनेन श्रीराधाया-जन्म सूचितमिति।

चेत् मूले 'रमा' शब्दं राधाशब्दं नहि। नैवं प्रसङ्ग वशतः शब्दस्य शास्त्र निर्णय करोति यथा—

वैकुण्ठे तु रमा ज्ञेया 'जानकी' दण्डिका वने।
रुक्मिणी द्वारवत्यां तु 'राधा' वृन्दावने वने॥

(मत्स्यपुराण १३ अध्याय १०-८३-४३ वैष्णवतोषिण्यां—मात्स्य-स्कान्दादिनिर्णीत्या कथितमिति)

श्रीशुकदेवः। श्रियापाठितः शुकः। इङ्गितने—श्रीस्वामिन्याः नम् श्रीभागवती संहितायां पठति तदेव क्रमतः दर्शते, यथा—

एवं वृन्दावनं श्रीमत्कृष्णः प्रीतमनाः पशून।
रेमेसञ्चारयन्नद्रेः सरिद्रोधस्सु सानुगः॥

—श्री भा० १०-१५-९

इत्थं प्रकारेण वृन्दयादेव्या अवनं रक्षितं बृन्दावने श्रीमती व्रज योषिन्मुख्या-श्रिया श्रीराधिकया युतः श्रीकृष्णः। पशून् गावः सञ्चरणं स्वानु सङ्गिकं मुख्यः प्रीतमनारनुगाभिस्सखीभिस्सहअद्रेः सरितो मानसि गङ्गायाः रोधस्सुरेमे एतदुक्तं चक्रवर्तिपादैः।

इस प्रकार दोनों वक्ता वस्तु निर्देशात्मक तथा 'नमस्कारात्मक' 'मङ्गलाचरण' श्रीशुक मुनि श्रीदशमस्कन्ध में श्रीनन्द राजकुमार की जन्म लीला वर्णन कर अनुसङ्ग में श्रीवृषुभानु-नन्दिनी की जन्म लीला 'रमा' पद देकर वर्णन करते हैं—

हे नृप ! अब श्रीराधिका जी के जन्मोत्सव में वृषभानु गोप के यहां चलो 'आरभ्य'पद में 'आं' वीज लगने से जब कि प्रकार 'वासु-देव' वाची है तो उनकी 'विशुद्धात्मिका शक्ति, श्रीराधा हुयीं।

वहाँ किस लिये चलना चाहिये ? बतलाते हैं कि–हरि जिस में निवास करते हैं, असाधारण गुणों के द्वारा श्रीकृष्ण को रमण कराने वाली होने से जिन्हें 'रमा' कहा गया है, उस रमा का अर्थात् श्रीराधा का श्रीव्रजमण्डल क्रीड़ा-स्थल हो गया है। इसलिये वहाँ चलिये। यह उत्कण्ठावश श्रीशुक का परीक्षित से कहना है।

अथवा—नन्द का 'व्रज' तो सर्वसमृद्धिमान् है, पर कृष्ण के जन्म काल से उनकी परम रमारूपा गोपियों में सुन्दर 'श्रीराधा जी' का आविर्भाव होने से वह व्रज विहार भूमि बन गयी है। अतः जन्मलीला वर्णन प्रसङ्ग में श्रीव्रजदेवियों का भी भगवान् की तरह प्राकट्य कह दिया, अन्यथा—'सर्वसमृद्धिमान्' पद में लक्ष्मी विराज रही है–यह बात तो कही ही जा चुकी थी। 'रमा क्रीड़ा' पद पुनरुक्ति हो जाता है। अतः रमा शब्द से 'राधा' शब्द ही जानना चाहिये।

यदि कोई कहे यहाँ तो 'रमा' शब्द है, 'राधा' कहाँ है? तो यह बात नहीं है। प्रसङ्ग-वश शास्त्र शब्द का निर्णय करता है–

यदि 'वैकुण्ठ की लीला' में 'रमा' शब्द आये तो 'श्रीमहालक्ष्मी' को जानना चाहिये। 'राम चरित्र' में रमा-शब्द से 'श्रीजानकी' जी को एवं 'द्वारिका' लीला में श्रीरुक्मिणी को और व्रजलीला में 'श्री राधिका' जी पर ही 'रमा' शब्द लागू है।

श्रीराधिका जी को 'रमा' शब्द से कहने का दूसरा कारण यह है कि–श्रीशुक श्री जी के पठित तोते हैं। जब कि कृष्ण लीला प्रारम्भ करने लगे तो श्री किशोरी जी ने इन्हें आज्ञा दी कि हमारा नाम प्रत्यक्ष श्रीभागवती संहिता में प्रकट नहीं करना। अतएव इशारे में श्रीस्वामिनी जी का नाम कहा है। उसे अब क्रम से दिखलाते हैं।

'एवं वृन्दावनं'—इस श्लोक में वृन्दा देवी द्वारा रक्षित श्री-वृन्दावन में श्रीमत्–इस पद से श्रीमती व्रजगोपियों के मध्य मुख्य श्रीशोभा से युक्त 'राधिका जी' के सहित श्रीकृष्ण का गौओं को चराना तो आनुसङ्गिक है, मुख्य प्रेममयी सखियों के सहित गोवर्द्धन पर्वत के समीप मानसी गंगा में नौका विहार द्वारा क्रीड़ा करना है। यह बात श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तिपाद ने टीका में लिखी है–

१ — श्रीमती स्वामिनी राधा

'राधा' शब्द द्वारा यथा—

अनयाऽऽ'राधितो' नूनं भगवान् हरिरीश्वरः ।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो या मनयद्द रहः ।।

श्री भा० १०-३०-२८

हे अनया । नय नीति राहितया गोप्येति सम्बोधनं । गोविन्दः राधयति आराधयतीति कृष्णं तां । राधां ग्रहीत्वा । इतः गतैः । इयधातौ गत्यर्थे । यद्यस्मान् विहाय यां राधां रहः—अनयदिति ।

(राधित पदेन) राधेति नामकरणं च दर्शितं । इति तोषिण्यास्— ततश्च राधायतीति राधेति नाम व्यक्तो वभूवेति। मुनिः प्रयत्नेन तदीय नामाप्यधात् परं किन्तु तदास्य चन्द्रात् स्वयं निस्तरेतिस्म कृपानु तस्याः सौभाग्यभेर्य्या इव वादनार्थमिति । इति चक्रवर्ति पादैः-

हे अनीति करने वाली गोपियो ! गोविन्द उनका आराधन करने वाली श्रीराधा के साथ ही एकान्त वन में गये हैं, जो हम सब गोपियों को छोड़ श्रीराधा को साथ लेकर प्रेमवश विहार कर रहे हैं।

यहाँ 'राधित' पद से 'राधा' नाम करण श्रीशुकदेवजी से हो गया—तोषिणीकार यह लिखते हैं। चक्रवर्त्तीपाद यह कहते हैं कि श्रीकृष्ण का आराधन करने वाली होने से 'राधा' यह नाम श्रीशुक-देवजी के मुख चन्द्र से छिपाने पर भी सौभाग्यभेरी पर कृपावश गूंज उठा । क्या चन्द्र का प्रकाश कभी छिप सकता है ?

तुष्यतु दुर्जन न्यायेन-प्रत्यक्ष 'राधा' मन्त्रं श्रीभागवती-संहितायां दृश्यते यथा—देवासुर संग्राम कालोपि श्रीशुकस्य राधामन्त्र स्फूर्तिरिति—

कबन्धा स्तत्र चोत्येतुः पतितः स्व शिरोक्षभिः ।
उद्यता युथ दोर्दण्डै 'राधा' वन्तो भटान्मृथे ।।

श्री भा० ८-१०-४०

राधादन्तः—श्रीराधा राथनवन्तः राधा भक्ता इति यावत् । उत्पेतुः सर्वोत्कृष्ट पदं श्रीकृष्ण चरणारविन्दं प्रापुः । कीदृशास्ते राधा-

वन्तः 'कबन्धाः के सुखे सदैव रसे' नित्यविहार सुखे बन्धनं परमासक्ति-र्येषां ते कबन्धाः । पुनः कथंभूता तत्र तस्मिन् श्रीराधराधन सुखे स्व शिराक्षिभिः यश्यन्तः स्वकीयैः शिरोभि रुत्कृष्टैः अक्षभिः नेत्रैः पश्यन्तु श्रीराधा कृष्ण नित्य विहार सुखं साक्षात् कुर्वन्तः । पुनश्च ते राध राधन वन्तः मृध संसार संग्रामे भटात् भटान्निजित्य उत्पेत् इत्यर्थः । स्वस्त्राज्जिजह्वेति इतिवत् भटान् काम क्रोधादि सौनिकान् उद्यता युध दोर्दण्डैः सहतेषां प्रेमविद्या तर्कैर्व्यापारै स्सह निर्जित्य उत्पेतुरित्य-न्वयः ।

श्रीस्वामिनी राधाजी के मन्त्र राधा नाम के उपासक भक्त कृष्ण चरणारविन्द को प्राप्त होते हैं । उनकी ही श्रीप्रिया-प्रियतम के नित्य विहार सुख में परमासक्ति होती है । वह 'राधाभक्त' सर्वोत्कृष्ट अपने धन्य नेत्रों से श्रीप्रिया-प्रीतम के नित्य-विहार सुख का साक्षात् दर्शन करते हैं और इस संसार संग्राम में काम क्रोधादि योद्धाओं को उनकी प्रेम नाशक क्रियाओं के साथ जीतकर श्रीकृष्ण चरणारविन्द को प्राप्त करते हैं । यह अष्टम स्कन्धमें देवासुर संग्रामप्रसंग में–'तुष्ट होवे दुर्जन' इस न्यायसे प्रत्यक्ष' राधा' पद श्रीशुकदेव जी ने दिखलाया है ।

२—'श्री' शब्द द्वारा राधा-नाम यथा :—

रास चत्वरे, प्रथम दर्शने गोपीना मुक्तिः—
'वीक्षाल का वृत' श्लोके—श्रियैकरमणमिति—

श्री भा० १०-२९-३९

तव सर्वाङ्ग सौंदर्यरूपं दृष्ट्वा वयं दास्यो भवाम । किंतु मनसि अय मेवायाति-अयं श्रीकृष्णः प्रियाः 'श्रीराधाया' रवे रमणः प्रियः । अतएव कथितं श्रियैक रमण मिति ।

अब 'श्री' शब्द द्वारा 'राधा नाम' दिखलाते हैं—जबकि रास चत्वर पर गोपियों ने वंशी नाद सुन श्रीकृष्ण का प्रथम दर्शन किया, उत्कण्ठा वश गोपियाँ कहती हैं कि-आपका सर्वाङ्ग सुन्दर रूप देख हम दासी हुई हैं, परन्तु हम लोगों के मन में यही आता है कि आप तो श्रीरूपा श्रीराधा के ही रमण हैं । अतःयहाँ 'श्रियैक रमण' पद से 'राधा रमण' ही बतलाया गया है ।

गोपिका गीते-प्रणत कामदमिति श्लोके-'श्री' निकेतन मिति—

श्री भा० १०-३१-७

ते तब यदाम्बुजं हृद्यर्पय-यो 'श्रियाः' 'श्रीराधायाः' निकेतनं गृहं। यथा गृह लक्ष्म्या गृहेऽधिकारः। यदा यदा विरह व्याधौ विकली भवति तदैव श्रीचरण स्पर्श द्वारा विरह व्याधि शमनं करोति।

गोपिका गीत में-प्रणत कामद-श्लोक में-'श्रीनिकेतन' पद द्वारा गोपियों ने प्रार्थना की है–आपके पदाम्बुज को अपने हृदय पर धारण कर विरह व्याधि को शमन करते हुये जो श्रीचरण 'श्री' रूपा राधा के घर हैं—जैसे गृह लक्ष्मी का घर पर अधिकार होता है उसी प्रकार उनका आपके पदाम्बुज पर अधिकार है। जब जब विरह व्याधि में विकल होती हैं, तभी आपके चरण स्पर्श द्वारा वह विरह शमन करती हैं।

श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्च कमेति—

श्री भा० १०-२९-३७

श्रीः—'राधेति' यत् श्रीकृष्णस्य चरण कमल रजं प्रेम वैवश्येन चकमे नामक शिरोमणेः वक्षसि हृदये प्रेयसी पदं साम्राज्यं लब्ध्वाऽपि यत् किल निश्चयार्थे भृत्यैजुष्टं सेवन योग्य मित्यर्थः। जुषि प्रीति से वने। यस्याः श्री राधायाः 'स्व' धन रूपं वीक्षणे श्रीकृष्णेन प्रयासः कृतः। यथाह—श्रीरसिकाचार्यैः—

यस्या कदाऽपि वसनाञ्चल खेलनोत्थ।
धन्यातिधन्य मनुते स कृतार्थ मानीति ॥

सा राधाऽपि-अभिसार काले 'तुलस्याः' सहचर्य्यास्सह अन्या प्रति पक्षयासहेर्ष्यां करोति।तद्वत्प्रेम प्राप्तयेऽन्य सुराणां स्त्रीणामिति शेषः प्रयासैव। तद्वत् 'श्रीराधिकावत्' वयं च तव पादरजः प्रपन्नाः भवामेति तात्पर्य्यार्थः।

अत्र 'श्री' शब्देन रमादिसेव्य रमानाथसेविता 'श्रीराधा' परम-रमेति सिद्धं तत्तन्नाम्नाभिधानं त्व भेदाभिप्रायेण! लोक प्रसिद्धमनु सृत्यैव इति विशुद्ध रसदीपिकायां।

व्रजाङ्गना गण श्रीश्याम सुन्दर के सान्निध्य में कहती हैं कि—

'श्री' रूपा राधा प्रेम की विवशता में श्रीकृष्णचरण रज को पाने की इच्छा करती है, जो कि निश्चय एकान्ती भक्ति द्वारा सेवन योग्य है। नायक शिरोमणि श्रीकृष्ण के हृदय में प्रेयसी पद साम्राज्य जिसने पा लिया है, उन्हीं किशोरी जी के कृपावलोकन धन को पाने का श्रीकृष्ण प्रयास करते हैं। रसिकाचार्य ने कहा है—

किसी अभिसार काल में वसनाञ्चल खेलन से उठी हुई पवन को पाकर वह नायक शिरोमणि अपने को धन्यातिधन्य कृतार्थ हुआ मानता है वह 'श्रीराधा' अभिसार काल में तुलसी मञ्जरी के साथ श्रीकृष्ण की चर्चा करती हुई अन्य प्रतिपक्षा नायिका के साथ ईर्षा करती हैं। उन श्रीराधिका के समान हम सब आपकी पदरज पाने को उत्कण्ठित हैं, जिस प्रेम के पाने के लिए देवाङ्गनाओं का 'प्रयास' भी है। यहां पर श्रीशब्दसे रमा द्वारा और रमानाथ द्वारा सेविता परम-रमा 'श्रीराधा' सिद्ध हुई हैं। यह सब तत् तत् नाम भेद लोक प्रसिद्धि के लिए ही जानना यह बात विशुद्ध रस दीपिकाकार टीका में लिखते हैं।

कुरुक्षेत्र यात्रा काले द्रौपद्यास्सान्निध्ये शोड़षसहस्त्र श्रीकृष्ण कान्ता-गणाः श्रीकृष्ण द्वारा ब्रजरज प्राप्य।
साभिलाषमूचू—कामयामह एतचच श्रीमत्पाद रजः श्रियः ॥

—श्री भा० १०-८३-४२

एतत् 'श्रीकृष्ण प्रियायाः, श्रीमत्-पादरजः श्रीशोभायुक्तालाक्त युतः पादरजः 'श्रियः' श्रीराधायाः–इत्यर्थः वयं कामया महेति।

"तासु (व्रजाङ्गनादिषु) या 'राधात्वे' प्रसिद्धा सर्वतो विलक्षणा श्रीविराजते तां (राधां) मुद्दिश्यैव तासां (षोड़श सहस्रराजकन्यानां) तदिदं वाक्यं" इति तोषिण्याम्। अत्र श्रीपदेन प्रसिद्धा नारायण कान्ता लक्ष्मी 'र्न' वाचनीयेति श्रीपदेन राधैवोच्यते इति चक्रवर्ति।

कुरुक्षेत्र यात्रा में द्रौपदी के समीप सोलह हजार राजकन्या द्वारिकानाथ के द्वारा व्रज रज को पाकर साभिलाष कहती हैं कि—हम इन श्रीकृष्ण की प्रिया 'श्रीराधाजी' की श्रीशोभायुक्त लाक्तारस से रञ्जित चरणरज को पाने की इच्छा रखती हैं। यहां व्रजगोपियों में विलक्षण श्रीराधाजी को लक्ष्यकर राजकन्याओं ने 'श्रीशब्द' कहा है—यह तोषिणीकार कहते हैं।

यहां 'श्री' शब्द से प्रसिद्ध श्रीनारायण की कान्ता लक्ष्मी को नहीं कहा गया है, 'श्री' कहकर 'श्रीराधा' जी का ही अभिप्राय है। यह श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ति लिखते हैं।

स्तुति परिहारेऽपि कथितं ब्रह्मणा यथा—
श्रीकृष्ण वृष्णिकुलेति श्री भा० १०-१४-४०
श्रिया 'राधिकया' युतः कृष्णः श्रीकृष्णेति—

श्रीब्रह्मा जी ने भी स्तुतिपरिहार में प्रार्थना की है कि श्रीस्वरूपा राधिका जी के सहित—हे श्रीकृष्ण ! आपको नमस्कार है।

तान्त्रिक परिचर्य्यायां भक्तानां स्तुतौ यथा—
श्रीकृष्ण कृष्ण सखेति —श्री भा० १२-११-२५

अस्मिन् श्लोके 'गोविन्द' पद सम्बोधनेन ब्रजलीला सूचिता ब्रजे प्रियां मध्येराधायाः प्राधान्यात्-श्रीशब्देन-'श्रिया' राधिकयायुतः कृष्ण श्रीकृष्णेति ज्ञेयमिति।

तान्त्रिक परिचर्य्या में भक्त गणों की स्तुति में गोविन्द सम्बोधन से व्रजलीला सूचित की गई है। ब्रज में 'श्री'-शब्द से श्रीराधा करके युक्त श्रीकृष्ण को ही यहां प्रणाम किया है—ऐसा जानना चाहिए।

नाम करण काले तां राधां गर्गोऽपि कथितेति—
'श्रिया' कीर्त्याऽनुभावेन गोपायस्वेति ।।

—श्री भा० १०-८-१९

हे साधका ! अयं नन्दात्मजः कीर्तिन्या-इति तृतीयान्तं-सम्वंधिन्या श्रिया राधया सहं गोपायस्व-गोपनीयेति।

नाम करण काल में—गर्गाचार्य ने 'श्रिया कीर्त्या' इस श्लोक में साधकों से कहा है कि—हे साधकगण ! कीर्तिदा जी के कुल को उज्ज्वल करने वाली 'श्री' रूपा श्री राधाजी के सहित इस नन्दनन्दन की उपासना करनी चाहिए। यह युगल उपासना अत्यन्त गोपनीय है। अतः छिपा कर रखिए।

तत्र महारास लीलायां रास मण्डले श्रीशुकः कृष्णं परिचिनोति यथागोप्योलब्ध्वेति-श्रिय एकान्त वल्लभमिति—

—श्री भा० १०-३३-१५

गोप्यो—श्रियाः 'श्रीराधाया रेवैकान्तं—वल्लभं पतिं नायकं प्राप्त विजह्निरे' अथवा–श्रियः श्रयते हरि रेनामितिश्रीः—स्वाधीन-पतिका तस्या परमरमायाः कान्तं-वल्लभं परम प्रेष्ठमिति विशुद्ध रस-दीपिकायाम् ।

रासमण्डल में श्रीशुकदेव जी श्रीकृष्ण का परिचय देते हैं कि–यह श्रीकृष्ण 'श्रीरूपा' श्रीराधा जी के ही एकान्त वल्लभ—अर्थात् पति हैं। जिनके साथ गोपियां विहार कर रही हैं।

अथवा—सेवा करते हैं श्रीहरि जिस की, उस श्रीस्वाधीन-पतिका परम रमारूपा श्रीराधिका के ये कान्त वल्लभ अर्थात् परम प्रेष्ठ हैं।—ऐसा विशुद्ध रस दीपिकाकार लिखते हैं।

कालियदमन लीलायां नाग पत्नी गणाः ऊचू यथा—
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाऽऽचरतपो—

श्री भा० १०-१६-३६

यच्छ्रीनन्दराजकुमारोऽयं मम प्रियतमोभवेदित्याकांक्षया श्रियस्वरूपिण्यैर्ललना प्रिया श्रीवृषभानुजा सूर्याराधनरूपं तपो-आचरदिति ।

कालियदमन लीला में नाग पत्नीगण कालियमर्दन की स्तुति करती हुई कहती हैं कि—नन्दराजकुमार यह श्रीकृष्ण मेरे प्रियतम हों—इस इच्छा से 'श्रीरूपा' ललना प्रिया अर्थात् श्रीवृषभानु-नन्दिनी सूर्य-कुण्ड पर सूर्य का आराधन करती हैं।

श्रीशुकः वृन्दावन विहार वर्णने धामस्यस्वरूपं दर्शयति यथा–
वनं कुसिमितं श्रीमदिति ।।

—श्री भा० १०-१८-७

कुसुमितं-वसन्तऋतुयुतं-श्रियायाः श्रीराधाया वनमिति ।

श्रीशुकदेव जी वृन्दावन विहार वर्णन लीला में धाम का स्वरूप दिग्दर्शन कराते हैं—जहां वसन्त ऋतु से युक्त फूल खिल रहे हैं, क्यों न वह वन शोभित होगा जो 'श्रीरूपा' श्रीराधा जी का वन है।

कृष्ण वेणुध्वनिं श्रुत्वा राधा सहचर्य्य—
स्साभिमानंमूचूरिति पूर्णाः पुलिन्द्येति ।।

श्री भा० १०-२१-१७

इयं पुलिन्द्यः पूर्णाः पूर्ण मनोरथाः। यः उरु निरन्तरं गायते यस्य गुणं तने कृष्णेन पदाब्जं-श्रीकुंकुमेन श्रिया राधया वक्षोजयोः माद-नाख्यमवस्थायां दत्तं चरणपङ्कजेलग्नं रजं लिम्पन्त्यः—आधिं चिरव्याधिं जहु।

अथवा उरुर्नाना प्रकार 'श्रीराधेति' नाम्ना गायो गानं वेण्वादौ यस्याःसा उरगाया श्रीराधैव तस्या पदाब्जयो रागस्य श्रीर्यस्मिन्स्तत्-कुंकुमं तेन। परमरमा राधैव,—इति प्रेम मञ्जरी टीकायाम्।

श्रीकृष्ण की वेणुध्वनि सुनकर श्रीराधा सहचरी गण साभि-मान बोलीं कि—ये पुलिन्ध्रीगण पूर्ण मनोरथा हैं। क्योंकि निरन्तर गाया जाता है गुण जिनका, उन श्रीकृष्ण चन्द्र के चरण कमल में लगे हुए 'श्री' रूपा राधिका जी के वक्षस्थल के उस कुङ्कुम को अपने अङ्गों पर लिम्पन कर विरह व्याधि शमन करती हैं, जो मादनाख्य अवस्था में मूर्च्छित प्रिया को चेतावनी देने के लिए सहचरियों द्वारा श्रीकृष्ण चरण स्पर्श कराते समय लग गया था।

अथवा—नानाप्रकार से गायी गयी वेणु में गुणावली जिसकी, उन श्रीराधा जी के श्रीचरणों की कुंकुम को चढ़ाकर अपना विरह दूर करती हैं—यह प्रेममञ्जरी टीकाकार लिखते हैं:—

श्रीशुकः दाम बन्धन लीलायां स्वाभाविकाह्लादन शक्तियुक्तं-कृष्णं वर्णयति यथा तत्रश्रिया परमया ककुभःस्फुरन्तौ—

श्री भा० १०-१०-२८

तत्रोलूखल बन्धन कालेऽपि बाल्यभावयुतेऽपि परमयाश्रिया राधिकया सह स्फुरन्तौ कृष्ण प्रणम्य तौ सिद्धौ नलकूबर मणिग्रीवौ स्तुतिं चक्रे यथा-हाग्रे त्वं महान् प्रकृतिः सूक्ष्मा रजः सत्व तमोमयी त्वमेव पुरुषोध्यक्षः।

त्वमेव तस्या (राधायाः) ध्यक्षः पुरुषरिति।
श्रीशुकोप्यग्रे कथित मिति इत्थं संकीर्तित ताभ्याम्॥

—श्री भा० १०-१०-३९

गुह्यकौ-ताभ्याँ-राधाकृष्णाभ्यामित्थं संकीर्तितेति।
महिषी गीतेऽपि श्रीराधायाः महत्व वर्णितं 'श्रीशब्देन'
राधानाम यथा—

हंस स्वागतेतिश्लोके–श्रियमृते सेवैक निष्ठा स्त्रियाम्निति—
श्री भा० १०-९०-२४

त्रिस्त्रयां मध्ये सेवैक निष्ठाश्रिय रूपां श्रीराधां ऋते वयं कस्माद्' भजामो-अपितु नैवेत्यर्थः। एतदर्थकथितं "कामयामह एतच्च श्री-मत्यादरजं' अतवोराधयतीति शास्त्रे राधा कथितमिति।

'महिषी गीत' में श्रीकृष्ण कान्ताओं ने श्रीकिशोरी जी की महिमा वर्णन की है--'श्रीशब्द से' राधानाम ही अभिप्रेत है। "हंसस्वागत" इस श्लोक में-महषीगण कहती हैं-स्त्रियों के मध्य सेवामें ही निष्ठा है जिसकी, उस श्रीरूपा श्रीराधा जी के बिना क्या हम आराधना कर सकती हैं ? अपितु नहीं कर सकती है। इसीलिये हमने द्रौपदी के सन्मुख कुरुक्षेत्र यात्रा में कहा था कि—हम श्रीजी–श्रीराधा के सहित इन गोविन्द की चरण रेणु चाहती हैं। अतएव आराधन धर्म जिसमें विराजमान है ? शास्त्र उसे 'राधा' कहता है।

३--'रमा' शब्द द्वारा राधानाम यथा—

रासक्रीड़ारम्भे शुकोक्तिः-भगवानपि श्लोके–योगमायेति—

श्री भा १०-२९-१

अगमा-यदा श्रीराधा रन्तुं मनश्चक्रे तदा पश्चात् भगवानपि रन्तुं मनश्चक्रे यः श्रीकृष्णः यां राधां-उपाश्रितः उपसमीपे-आश्रितः। शरदोत्फुल्ल मल्लिका ताः रात्री वीक्ष्येति।

अथवा—योगस्य सम्भोगस्य मायो मानं पर्य्याप्ति यस्यां सा योगमाया श्रीराधेति। अथवा–योगस्य सम्भोगस्य मा लक्ष्मीः सम्पत्ति-रिति यावत् तां याति प्राप्नोतीति योगमाया श्रीराधैव तां मनसा उपाश्रितः रास क्रीड़ायास्तद्धेतुकत्वात् तत् पाद्मे-प्रसिद्ध मेव। इति वृहत्तोषिण्याम्।

अब 'रमा' शब्द द्वारा 'राधा'नाम दिखलाते हैं–रासलीला के प्रारम्भ में श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि–अगमा श्रीराधा ने जब रास क्रीड़ा की इच्छा की तब उनके पीछे भगवान् ने भी रमण करने की इच्छा की। शरद ऋतु में खिली मल्लिकाओं को देख कर श्रीकृष्ण उन श्रीराधा के समीप आश्रित हुए।

अथवा:—योग सम्भोग शृङ्गार की पर्याप्ति जिसमें है वह योग-माया श्री'राधा' ही हैं। या-जो श्रीकृष्ण मिलन की शोभा-सम्पति रूपा हैं एवं जिनको पाकर रासलीला की पूर्ति हो जाती है, उन श्रीराधा जी की मन द्वारा श्रीकृष्ण चन्द्र ने उपासना की क्यों कि यह महारास उनके ही लिये है। यह इतिहास पद्म पुराण में प्रसिद्ध है।

ऐसा श्रीपाद सनातन गोस्वामी वृहत्तोषिणी टीका में लिखते हैं।

श्रीशुकः रास लीलायां वृन्दावने 'चन्द्रोदय' शोभा वर्णयति यथा—
दृष्ट्वेति श्लोके-रमाननाभमिति—

—श्री भा० १०-२९-३

रमायाः-राधायाःआननस्य आभा-इव आभा यस्य स तं अथवा-रमतीति रमा श्रीराधा ननु रमाननमिति। इति वृहत्तोषिण्याम्।

श्रीशुकमुनि रासलीला के आरम्भ में श्रीवृन्दावन में चन्द्रोदय की शोभा वर्णन करते हैं कि—श्रीकृष्ण चन्द्र ने 'श्रीरमा' रूपा राधिकाजी के आनन की आभा वाले चन्द्र को देखा। अथवा-श्री-कृष्ण के चित्त को रमाने वाली 'श्रीरमा' श्रीराधा का ही मुख है क्या ?—ऐसा वृहत्तोषिणीकार टीका में लिखते हैं।

श्रीशुकः प्रथम रासे वन विहारं वर्णयति यथा—
ताभिस्समेताभिः —श्री भा० १०-२९-४३

सः श्रीकृष्णः माभिः राधाभिस्सह–ताभिस्सखिभिस्सह—विजह्रिरे। अथवा–मा शोभा परम सौन्दर्यं तया सह वर्तते समा परम सुन्दरी श्रीराधा।। तया इताभिः प्राप्ताभिः। इति वृहत्तोषिण्याम्।

श्रीशुकदेव जी प्रथम रासलीला के वर्णन में वनविहार वर्णन करते हैं कि—वह रास विहारी श्रीकृष्ण श्रीराधाजी के साथ गोपियों को लेकर विचरने लगे। अथवा–'मा' शोभा की खान परम सुन्दरी 'श्रीराधा' को पाकर विहरने लगे। ऐसा श्रीवृहत्तोषिणीकार लिखते हैं।

श्रीशुकरन्तर्द्धान कालेपि राधिकया सह विहारं वर्णयति यथा—
गत्यानुराग श्लोके-रमायते स्ता स्ताः विचेष्टेति—

श्री भा० १०-३०-२

रमायाः राधायाः-पतेः। गोप्यो विचेष्टा जगृहुरिति। अथवा-रमा श्रीराधेति। तास्ताःपरमानिर्वचनीया चेष्टेति। इति वृहत्तोषिण्याम्।

श्रीशुकदेव जी श्रीकृष्ण के अन्तर्धान काल में भी श्रीराधाजी के साथ विहार की सूचना दे रहे हैं कि—गोपियां 'रमा' रूपा श्रीराधा के पति श्रीकृष्ण के उस अनिर्वचनीय विहार का स्मरण करने लगीं। ऐसा वृहत्तोषिणी में लिखा है।

कृष्णान्वेषणे वनलतान् प्रति गोप्यो कथयन्ति यथा-
बालत्य दर्शितेति श्लोके–करःस्पर्शेन माधवः

श्री भा० १०-३०-८

वृन्दावन में श्रीकृष्ण चन्द्र का अन्वेषण करती हुयी गोपियां वन लताओं के प्रति कहती हैं कि—

यः वैवाहिक संस्कार द्वारा करः स्पर्शेन 'मा' राधायाः धवः पतिर्बभूव अथवा–मायाः श्रीराधामाधवः श्रीराधावल्लभ इत्यर्थः इति विशुद्ध-रस दीपिकायां।

जो वैवाहिक संस्कार द्वारा हाथ पकड़ कर 'रमा' रूपा श्रीराधिका जी के पति हुए हैं। अथवा–'मा'—राधा के पति हैं अर्थात् राधावल्लभ हैं वह हमारे--तुम्हारे सबके आराधनीय हैं। ऐसा विशुद्ध रस दीपिका के टीकाकार लिखते हैं।

श्रीव्रजदेव्योऽपि कृष्ण सान्निध्ये रास चत्वरे श्रीराधिकानुरागं वर्णयति–यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं रमायेति–

श्री भा० १०-२९-३६

हे कमल लोचन। इति सम्बोधनेन स्वानुरागं प्रियतमे दर्शितं। रमायाः श्रीराधायाः औत्कण्ठ्य विवशताया तव द्वारा दत्तः क्षणं। श्रीचरण सान्निध्ये। आश्रयं दत्त मित्यर्थः। अथवा—अरण्यजन प्रियस्य तव या रमा श्रीराधा तस्याः पादतलं दत्त क्षणं उत्सव मिति। इति वृहत्तोषिण्याम्।

श्रीव्रजदेवीगण श्रीकृष्ण सान्निध्य में रासचत्वर पर श्रीराधिका जी का अनुराग वर्णन करती हैं कि—हे कमलदल लोचन! इस सम्बोधन से अपना अनुराग प्रियतम में दर्शाया। 'श्रीरमा' रूपा

श्रीराधा को उत्कण्ठा की विवशता में आपके द्वारा श्रीचरणों के सान्निध्य में आश्रय दिया गया है। अथवा—एकान्त ही है प्रिय जिनको, ऐसे आपके द्वारा 'रमा' श्रीराधा को आनन्द मिला है। ऐसा वृहत्तोषिणीकार लिखते हैं।

कृष्णान्वेषण काले गोप्यो राधां प्राप्याश्चर्यंति यथा—
तया कथित माकर्ण्येति श्लोके-माधवादिति

श्री भा० १०-३०-४२

तया राधिकया द्वारा कथित माकर्ण्य मया-मायाः-रमायाः धव द्वारा चञ्चल द्वारा मान प्राप्ति च। दौरात्म्यादहं अवमानं कृतं तस्योचितं दण्डं प्राप्तं। इति श्रुत्वा सर्वेगोप्यो परमं विस्मयं ययु रिति अथवा-माधवादिति मनीन्द्रोक्तिः-माया तस्या एवधव। इति विशुद्ध रस दीपिकायाम्।

कृष्णान्वेषण काल में गोपीगण राधाजी को पाकर आश्चर्य करती हैं—जब राधिका जी के द्वारा कहा वचन सुनती हैं कि—मुझ रमा रूप राधा के पति को आखिर उस चञ्चल का मान मिला और मैंने ही दौरात्म्यभाव से उनका अपमान किया जिसका उचित दण्ड मिल गया। यह सुन कर गोपियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। अथवा—माधव से यह श्रीशुकदेव जी की उक्ति है 'मा' रमा रूपा 'राधा' का ही वह पति है। ऐसा विशुद्ध रस दीपिकाकार लिखते हैं।

उद्धव सान्निध्ये व्रज देवीनां प्रलापेऽपि यथा—
हे नाथ हे रमानाथ—

श्री भा० १०-४७-५२

रमायाः श्रीराधायाः नाथेति।

महाभागवत श्रीउद्धवजी के प्रति प्रलाप में भी कहती हैं कि-- हे रमा रूपा श्रीराधा के नाथ ! व्रज की रक्षा करिये।

गोचारण विहारे श्रीशुकः निभृत निकुञ्ज मन्दिर विहारेऽपि वर्णितं यथा—एवं निगूढ़ात्मगतिः-रमा लालित पादपल्लवेति—

श्री भा० १०-१५-१९

एवमेव निगूढ़ा-आत्मा-श्रीराधायाः गतिर्चेष्टा यस्य सः। निकुञ्ज-मन्दिरे रमायाः श्रीराधायाः लालितौ पादपल्लवौ यस्य सः। रमेति।

गोचारण विहार में श्रीशुकमुनि निभृत निकुञ्ज मन्दिर का विहार भी वर्णन करते हैं कि—इस प्रकार ही छिपी हुयी है आत्मा (आह्लादनी शक्ति) रूपा 'राधा' जिसमें, उस श्रीकृष्ण का विहार श्रीराधा के लिये ही है। वह श्रीनन्द राजकुमार निकुंज मन्दिर में मध्याह्न काल में रमा रूप श्रीकिशोरी के चरण पलोटते हैं।

महारास लीलायां श्रीशुकः निभृत विहारं वर्णयति यथा—
एवं परिष्वङ्गेतिश्लोके—रेमे रमेशो—

श्री भा० १०-३३-१७

एवं परिष्वङ्गादिना। रमायाः–राधायाः ईशः श्रीकृष्णेति रेमे। अथवा—रमेशः श्रीराधारमण स्ताभिः व्रज सुन्दरीभिः। परम रमा राधैवेति विशुद्ध रस दीपिकायाम्।

महारास लीला प्रकरण में श्रीशुकदेव जी श्रीगोविन्द का निभृत विहार वर्णन करते हैं कि—परिरम्भणादि अनुभावों द्वारा उस 'रमा' रूपा श्री 'राधा' जी के साथ उन व्रज देवियों को सङ्ग लेकर श्रीकृष्ण ने विहार किया। यहाँ 'रमा' परमरमा श्रीराधा ही को जानना चाहिये।

ऐसा विशुद्ध रस दीपिकाकार लिखते हैं—

रासलीलायां गोपी मण्डले प्रकटी भूत्वा कृष्णः राधां प्रति अनुनयं करोति यथा—न पारयेऽहमिति श्लोके या माभजन्निति—

श्री भा० १०-३२-२२

या मा लक्ष्मी रूपा-राधा अभजन्, तथा न पारयेऽहमिति। यतः मदर्थोज्झित लोकवेदेति।

पूर्व श्लोके कृष्णस्यानुनयं राधां प्रति यथा—
मया परोक्षं भजता तिरोहितमिति—

श्री भा १०-३२-२१

मया-राधयासह निकुंज मन्दिरे परोक्षं-एकान्ते-भजता, भज सेवायांधात्वर्थे-सेविता तिरोहितं-तासां-सखीनां-मञ्जर्य्यादीनां-तत् सेवयैव सुखो दयतेत्यर्थः। इयमेव तत्सुख सुखित्वधर्मम् दर्शितं। अतः—

मा सूयुतं मार्हथेति—

—श्री भा० १०-३२-२१

मा—रमा रूपा-हे राधेति सम्बोधनं। तव प्रेमालापाश्रवणार्थं। एतेव मम-अन्याभिलाष दोषं तत् 'शठनायकत्व' धर्मं दर्शनार्थं। मां प्रति असूयुतं असूयां कर्तुं नार्हसि। यतः अहं तव प्रियः त्वां मम-प्रियेति। अन्योन्यप्रियत्वेन मम तिरोधानाद्यपराधोन ग्राह्य इति-भावः। तोषिण्याम् ॥

रास लीला में गोपी मण्डल में प्रकट होकर श्रीकृष्णचन्द्र श्री-राधिका जी से अनुनय करते हैं कि—जिस प्रकार रमारूपा श्रीराधिका मेरा सेवन करती हैं मेरे लिये लोक वेद का सर्वथा त्याग किया है। उस प्रकार मैं नहीं कर सकता।

पूर्व श्लोक में भी श्रीकृष्णचन्द्र श्रीकिशोरी से अनुनय करते हैं कि रमा रूपा श्रीराधिका के संग निकुञ्ज मन्दिर में परोक्ष (एकान्त) में सेवा करने के लिये अन्तर्धान हुआ था क्यों कि उनकी प्रिय सखी गण और मञ्जरीगणों को उस परस्पर सेवा से ही सुखोदय होता है। यही अनुराग का तत्सुख सुखित्व धर्म प्रधान हैं। अतः-मारूपा-हे वृन्दावन की अधिष्ठात्री राधे ! तुम्हारे प्रेमालाप को सुनने के लिये छिपा, यही अन्याभिलाषदोष मुझमें है वह भी 'शठनायकत्व' धर्म दिखाने के लिये है। अतएव मुझ प्रियतम के प्रति असूया करने को आप योग्य नहीं हैं। इसलिये कि मैं तुम्हारा प्रियतम हूँ (अत्यन्त प्रेमास्पद हूँ) तुम मेरी प्रिया हो। जब कि हम तुम अन्योन्य प्रिय हैं तब मेरा तिरोधान अपराध आप ग्रहण न करेंगी।

ऐसा तोषिणीकार ने लिखा है—

श्रीशुकोऽपि कौमार विहार वर्णनारम्भे 'तां वर्णयति यथा—वृन्दावन गोवर्द्धनमिति श्लोके—राममाधवयोरिति ॥

—श्री भा० १०-११-३६

अत्र रामाश्च माधवश्च राममाधवौ तयो राममाधवयोः। हे नृपेति सम्बोधनं श्रीशुकस्य निभृत लीला स्मरणार्थमिति।

श्रीशुकदेव जी भी कौमार विहार वर्णन करने के आरम्भ में उन श्रीराधिका जी का वर्णन करते हैं कि—श्रीवृन्दावन गोवर्द्धन

यमुना पुलिन का दर्शन कर उन 'रमा श्री राधा' और माधव के हृदय में उत्तमा प्रीति उदय हुयी। हे नृप! इस सम्बोधन द्वारा उस निभृत लीला की स्मृति करायी गई है।

श्रीजगद्गुरुर्ब्रह्माऽपि श्लेषेण श्रीराधिका महिमानं दर्शयति यथा—अहोभाग्यमिति श्लोके– यन्मित्रं परमानन्द मिति—१०-१४-३२ व्रजौकसां-गोपीना महोभाग्यं—परा च रमा च परमाराधेत्यर्थः—आनन्दं आनन्द स्वरूपिणं कृष्ण मित्यर्थः। तौ परमानन्दौ तं परमानन्दं। पूर्णम्—ब्रह्मएकीभूय विराजमानं श्रीराधाकृष्णं-यत् सनातनं मित्रमिति। 'ब्रह्मविशेषण त्वात् श्रीभगवत्प्रियतमानामपि श्रीराधादीनां माहात्म्यमिति।' इति तोषिण्याम्।

श्रीजगद्गुरु ब्रह्मा भी श्लेष में श्रीस्वामिनी राधिका जी की महिमा दिखलाते हैं—अहो भाग्य-इस श्लोक में कहते हैं कि—व्रज की इन गोपियों का बड़ा भाग्य है—जो 'पराशक्ति' परम रूपा राधिका के सहित आनन्द स्वरूप कृष्ण-पूर्ण ब्रह्म एक होकर विराजमान हैं। श्रीराधा-कृष्ण जिनके सनातन मित्र अर्थात् परम प्रेमास्पद हैं। यहां—'ब्रह्म' इस विशेषण द्वारा श्रीभगवत् प्रियतमाओं में श्री-राधा प्रभृति के माहात्म्य को प्रदर्शित किया। यह तोषिणीकार लिखते हैं।

५—'इन्दिरा' शब्द द्वारा 'राधा' नाम यथा—

गोपिकागीते-गोपिकानामुक्तिः जयतितेऽधिकंश्लोके--श्रयत इन्दिरेति--

१०-३१-१

ते तव जयति। इन्दिरा जन्मना 'श्रीराधाजन्मनेत्यर्थः---अधिक जयति-सर्वोत्कर्षेण वर्तते-विराजतेति। हि-अत्र ब्रजे भौम वृन्दावने त्यर्थः-इन्दिरा तव चरणं सेवते-तदेव तस्या राधयति। आराधतीति 'राधा' नाम गोलोके सेव्यात्र सेविकेति भावः [तत्र व्रजे "इदि परमैश्वर्यं" इदि धातु। इदिमैश्वर्य्यं रातिददातीति, इन्दिरा नित्यैश्वर्य्यादिति] इति विजयध्वजीटीकायाम्।

'इन्दिरा' शब्द द्वारा 'श्रीराधा' नाम—जैसा कि गोपिकागीत में व्रज देवियों ने कहा है कि—"आपका जन्म होने से यह व्रज सर्वो-

त्कर्ष से विराजमान है। इन्दिरा रूपा श्रीराधा नाम के जन्म होने से अधिक उत्कर्ष से विराजमान है। निश्चय ही इस व्रज में—भौम वृन्दावन में इन्दिरा आप के चरणों की सेवा करती हैं। इस से ही 'राध्' धातु ने 'राधा' नाम कहा है। गोलोक मेंयह सेव्या है, यहां सेविका है।

इदि-परमैश्वर्यधातु से ऐश्वर्य्य देने वाली 'इन्दिरा' नाम से 'राधा जी' को ही कहा है—

यह विजयध्वजी टीकाकार ने लिखा है।

६—'पद्मा' शब्द द्वारा 'राधा' नाम यथा—

गोपिकागीते व्रजदेवीनामुक्ति-प्रणतकामदमिति श्लोके—पद्मजार्चितमिति—

श्रीभा० १०-२१-१३

नः चरणपङ्कजमर्पय। कथं भूतं चरणपङ्कजं। यः 'पद्मजा' श्रीराधिका द्वारा पूजितं। श्रीराधा पद्मज्जातेति-इति हासो द्रष्टव्येति। पद्मजार्चित-पदेन धर्मरूपता निरूपितेति। इति सुबोधिन्याम्।

'पद्मजा' शब्द द्वारा राधानाम दिखलाते हैं---गोपिका गीत में व्रज गोपियों ने कहा है—"हे रमण! अपना चरण कमल हमारे वक्षोजों पर अर्पण करिये। कैसा चरण कमल है?—जिसकी 'पद्मजा' श्रीराधा पूजा करती हैं। श्रीराधा कालिन्दी में कमल से प्रकट हुयी हैं—यह इतिहास देखना चाहिए। यहां पद्मजार्चित पद द्वारा गोपियों ने धर्म रूपता निरूपण की (अर्थात् जैसे पति के श्रीचरण की पत्नी अपना कर्त्तव्य समझ कर सेवन करती है) यह सुबोधिनी कार लिखते हैं।

७—'गोपी' शब्द द्वारा राधा नाम यथा—

श्रीरासलीलायां प्रथम मिलने श्रीशुकेन कथितं यथा—इत्येवंश्लोकेयां गोपी मनयत्कृष्णेति। —१०-३०-३६

यां 'गोपीम्' श्रीराधामिति। 'या' कृष्णस्य गोरिन्द्रियाणि 'याति' रक्षतीति 'गोपी' सामिरूर्थ [समुलेखः (राधायाः) तासां

(गोपीनां) च को विशेषः गोपीरिति गोपो भूपेत्यमरः ततश्च तासां सर्वासां इयं राज्ञी स्वामिनी त्यर्थः। इति विशुद्ध रस दीपिकायां। [अण 'वृषभानु नन्दिन्याः' विप्रलम्भांशं वर्णयितुं पीठिका रचयति। 'या मिति। गूढ़ार्थ दीपिकायाम्]

'गोपी' शब्द द्वारा राधा नाम दिखलाते हैं---गोपिकाओं के मध्य श्रीराधिकाजी को लेकर निकुञ्जमें श्रीकृष्ण विहार करने लगे। वहां श्रीशुकदेव जी ने कहा है कि—"जिस गोपी को अर्थात् श्री-राधिकाजी को लेकर श्रीकृष्ण विहार करने निकुञ्ज में गये, उस श्रीराधा में क्या विशेषता है?—यहां यह दिखाया है कि वह श्री-कृष्ण की अखिलेन्द्रियों की रक्षक हैं। उन्हें गोपी कहा जाता है। 'गोप' शब्द 'भूप' वाची है अर्थात् जोकि सब गोपियों की पटरानी हैं। यह विशुद्ध रस दीपिकाकार और गूढ़ार्थ दीपिकाकार लिखते हैं।

पूर्वानुराग वर्णने श्रीशुकः राधिकाप्रेमोत्कृष्टं दिगवर्णयति यथा— गोपीनां परमानन्देति

श्री भा० १०-१९-१६॥

गोविन्ददर्शनकाले गोपीनांमध्ये परा च रमा च परमा-- श्रीराधायामित्यर्थः। आनन्दो-आसीत्। मुक्त प्रग्रहवृत्या पराकाष्ठा-आसीत्। यासांराधादीनां येन कृष्णेनविना क्षणं युगशतमभूदिति। अतएव कथितं महानुभावैः—"क्षणयुग शतायमानत्वं" महाभाव-त्वं महाभाव स्वरूपेयं" राधेतिनिर्णयात् महाभाव त्वं राधात्वमिति निर्णयः। अतएव महाभाववत्योवृषभानु नन्दिनी प्रभृतय ज्ञेया। इति चक्रवर्तिन्याम्। अतएव श्रीशुकेनापि'गोपी'शब्देन'ता'मकथदिति यथा--

द्वात्रिंशाध्याय समाप्तौ 'गोपी' सात्वनं नामेति कथितं। 'गोपी' त्यत्रैकवचनेन राधैवज्ञेयान्यथा बहुवचनमत्रादानमावश्यकमिति।

पूर्वानुराग वर्णन में श्रीशुकदेवजी श्रीराधिका जी के उत्कृष्ट प्रेम का दिग्दर्शन कराते हैं उन्होंने कहा है कि गोविन्द के अवलोकन काल में गोपियों के मध्य परा रमा रूपा श्रीराधाजी के चित्त में परम आनन्द हुआ। एवं मुक्त प्रग्रह वृत्ति से वह पराकाष्ठा को प्राप्त हुयीं। श्रीकृष्ण के विरह में उन राधिकादि गोपियों का एक क्षण सौ युग के समान व्यतीत होता था। प्रियतम के विरह में एक क्षण

शतयुग के समान व्यतीत होना महाभाव का स्वरूप है। महाभाव स्वरूप श्रीराधा होने से उन्हें 'राधा' कहते हैं। वह महाभाव की अधिष्ठात्री देवी हैं। अतः गोपी शब्द से महाभाववती 'वृषभानु नन्दिनी' प्रभृति को ही जानना चाहिए। ऐसा श्रीचक्रवर्तिपाद टीका में लिखते हैं।

उद्धव मिलने श्रीशुकेन गोपीशब्द द्वारा राधिकैवकथिता यथा— अथ गोपीरनुज्ञाप्येति। श्री भा० १०-४७-६४॥

अथ कतिचिन्मासानुवासोद्धवः। 'गोपी' श्रीराधासान्निध्येऽनुज्ञाप्य मथुरां गतेति। गो भावं रक्षतीति गोपीत्यर्थः।

श्रीउद्धव-मिलन में श्रीशुकदेव जी ने 'गोपी' शब्द द्वारा 'श्रीराधिका' जी के ही लिए इशारा किया है। कुछ दिन ब्रज में रहकर उद्धव 'गोपी' अर्थात् श्रीराधा जी से आज्ञा लेकर मथुरा को चल दिये। यहां गोपी शब्द 'भाव' वाची है अर्थात् जो कि भाव का संरक्षण करने वाली है, उसे 'गोपी' कहते हैं।

गोपिका गीतानन्तरं-अग्रिमाध्यायस्य प्रथम श्लोके श्रीशुकेन-दर्शितं यथा इति गोप्यः प्रागायस्यः —श्री भा० १०-३२-२

एवं प्रकारेण गोप्योगायन्त्यः। 'श्रीराधा' प्रलपन्त्यः। एतदेव 'च' कारोददति। एतत्पूर्वोक्त श्रीराधादेवी गीतमेव सर्वाः प्रकर्षेण तद्विद्ध चित्तया परमासक्तया गायन्त्यः प्रकर्षेण लपन्त्यश्चेति। वृहत्तोषिण्याम् ॥

इस प्रकार श्रीव्रजदेवियों ने श्रीकृष्ण-दर्शन की लालसा में गीत गाया है। श्रीराधादेवी ने "यत्तेसुजात" श्लोक द्वारा प्रलाप किया। इसी से चकार पद दिया। यह पूर्वोक्त श्रीराधा जी का गाया गीत सब गोपियों ने अपनी प्रिय सखी के विरह विद्ध चित्त को शान्ति देने की कामना से परमासक्ति वश गाते हुए प्रलाप किया। यह वृहत्तोषिणीकार टीका में लिखते हैं।

ग्रीष्मर्तु विहार वर्णने श्रीशुकदेवेन 'गोपाल' शब्द द्वारा 'ताभ्यां' नित्य विहारमपि वर्णितं यथा—

व्रजे विक्रीड़ितोरेव मिति

श्रीभा० १०-१८-२॥

व्रजतीति-व्रजस्तस्मिन्-अभिसार स्थानेत्यर्थः।

व्रज-गोपाल रूपेण-छद्म माययादम्भेण-सुवलवेशंधारियित्वेत्यर्थः। "मायादम्भे कृपायां चेत्यमरः" एवं विक्रीड़तरिति ग्रीष्मोरितुरभवत्। गोपजातिप्रतिच्छन्नौ—श्रीभा० १०-१८-११ श्लोकतः १३ पर्यन्तम्। अतएव-गोपजाति रूपेण प्रतिच्छनौ। काक पक्षधरौ स्वयं गायकौ-वादकौ 'साधु साध्विति वादिनौ' तौ 'राधाकृष्णौ' इडिरेति। हे महाराज ! सम्बोधनेन नित्य विहारस्य सूचना परिक्षिते स्वदत्तेति।

अत्र-कृष्णरामौ 'च'—वचनेन नैमित्तिक प्रलम्बवध लीला सूचिता। च—शब्देन नित्यलीला दर्शितेति ज्ञेयम् [काकपक्षः केश-गुम्फितवेणी त्रय मिति केचित्। तोषिण्याम्॥ अग्रे पञ्चदश श्लोके—नृपचेष्टया श्लोके-व्रजबाला निरोधः तया (राधया सहेति) इति चक्रवर्ति टीकायामिति।

'ग्रीष्मऋतु' के विहार वर्णन में श्रीशुकदेवजी ने 'गोपाल' शब्द द्वारा प्रिया प्रियतम का नित्य विहार भी वर्णन कर दिया है उसे भी 'गोप' शब्द से दिखलाते हैं—व्रजेविक्रीड़तोरेवं-इस श्लोक में अभिसार स्थान में-अर्थात् जहाँ नायक के साथ नायिका मिलती है, वन में छद्म धारण कर यानी सुबल गोपका वेश धारण कर विहरते हैं। माया को कोष में दम्भ बतलाया है। अतएव गोप ग्वालों के रूप में छिपे हुए हैं, गुथी हुई तीन वेणी धारण की हैं। कभी गाते हैं,कभी वेणु बजाते हैं, कभी परस्पर के आलाप को सुनकर वाह वाह कहकर प्रसंशा करते हैं। वे श्रीराधा-कृष्ण इस प्रकार विहरते हैं।

हे महाराज ! इस सम्बोधन से नित्य विहार की सूचना परीक्षित को करायी है। यहां पर-'कृष्ण रामौ' पद से नैमित्तिक "प्रलम्बवध-लीला" सूचित की। 'च' कार पद से नित्यलीला दर्शायी है। 'काक-पत्र'-शब्द से वेणी गुथी हुयी हैं। ऐसा 'तोषिणीकार' लिखते हैं। आगे के पन्द्रहवें श्लोक में नृपचेष्टया—इस श्लोक की टीका में—व्रज बालाओं का निरोध 'श्रीराधिका' जी के साथ किया, ऐसा श्रीचक्रवर्ति पाद लिखते हैं।

८ — 'कान्ता' शब्द द्वारा श्रीराधा नाम यथा —

रासलीलायां कृष्णान्वेषणे गोप्यो कथयन्तिः--'कान्ताङ्ग' सङ्ग कुङ्कुम रञ्जितायेति ।।

—श्री भा० १०-३०-११

'कान्तायाः' राधयाः। अङ्गसङ्गेन लग्नं कुचकुङ्कुम मालायाः वायुरत्र वातीति। कस्य सुखस्यान्तः पर्य्यवसानं वा यस्यां तस्याम् 'श्रीराम नारायणजी कृत' विभाविका टीकायास् ।

अत्रावरोपिता कान्तेति —श्री भा० १०-३०.३३ अत्र 'कान्ता' 'राधा' पुष्पहेतोऽवरोपितेति ।

तानिचूड़यता कान्तेति —श्री भा० १०-३०-३३ कृष्णः 'चूड़-यता' कान्ता 'राधा' उपविष्टमिति ।

'कान्ता' शब्द द्वारा श्रीराधानाम दिखलाते हैं—रास लीला में कृष्णचन्द्र को खोजती हुयी गोपियां कहती हैं-कान्ताङ्गसङ्ग—श्लोक में कान्ता अर्थात् राधा के अङ्ग सङ्ग से लगी कुच कुङ्कुम की माला की सुगन्ध इधर आ रही है [सुख का पर्यवसान जिसमें है, उस 'कान्ता' शब्द से यहां 'श्रीराधिका' को ही निर्देश किया गया है। यह रामनारायण कृत विभाविका टीका में लिखते हैं।

अत्रावरोपिता-श्लोक में-'कान्ता' शब्द से 'श्रीराधाजी' को अङ्क से श्रीगोविन्दने उतारदी हैं, यह गोपियों ने कहा है।

तानिचूड़यता—श्लोक में–'कान्ता पदसे केशसंस्कार (वैनी बांधना) श्रीराधा जी का ही किया है, ऐसा व्रज देवियों का कहना है।

९—'काचित्' शब्द द्वारा राधा नाम यथा—

वसन्तऋतु विहार वर्णने श्रीशुकः यथा—कदाचिदथगोविन्देति ।

—श्रीभा० १०-३४-२०

कदाचिदिति पूर्णमायां। अथ दिति शरद्दतुरन्तरे वसंसतौ। 'तौ' श्रीराधा कृष्णौ-चतुर्थश्लोकेद्रष्टम्यमिति। उपगीयमानौ-स्वलङ् कृतानुलिप्ताङ्गो-स्रग्विणौ-विरजोवरौ कल्पयंतौ विजह्रतु ।

अत्र 'कदाचित्' 'अथ' शब्दौ लीलान्तर दर्शनार्थ श्रीशुकदेवेन-दत्तं। 'कदाचित्' शब्देन रामकृष्णस्य नैमित्तिक लीला शङ्खचूडवध

वर्णनार्थं। "अथेति" शब्देन नित्यलीला वासन्त विहार वर्णनार्थं ज्ञेयमिति।

'काचित्' शब्द द्वारा राधा नाम दिखलाते हैं---वसन्त ऋतु के बिहार वर्णन में श्रीशुकदेव जी कहते हैं कि—'कदाचित्' होलिका पूर्णिमा के रोज शरद ऋतु के बाद वसन्त ऋतु में "वे श्रीराधा-कृष्ण"—इस बात का चतुर्थ श्लोक में 'तौ' शब्द के द्वारा श्रीशुकदेव जी ने उनके नित्य विहार का निर्देश कराया है। मधुर स्वर से गाते हुए जिन्होंने सुन्दर वस्त्रालङ्कार धारण किये हैं। वन के वासन्ती पुष्पों की माला शोभा दे रही है वे वसन्त ऋतु में विहरते हैं।

यहां 'कदाचित्' शब्द से श्रीराम-कृष्ण की नैमित्तिक लीला 'शङ्खचूड़वध' दिखलाई है। 'अथ' शब्द से राधा कृष्ण की नित्य लीला 'वासन्त विहार' वर्णन किया है।

तत्र रासलीलायां—'काचित्' समं मुकुन्देन श्रीभा० १०-३३-१०॥ **कासु स्वरूपा चिदिति चिद्रूपा चिदानंदमय श्रीमती राधेति। भाव-विभाविका टीकायाम्।**

रासलीला में भी चिदानन्दमयी 'काचित्' शब्द से श्रीराधा जी को कहा है।

उद्धव दर्शने महाभावावस्थायां 'राधा' वर्णयति शुकोःयथा काचिन्मधुकरं दृष्टवेति। श्रीभा० ॥ १०-४७-११ ॥ **के प्रेम सुखे पर्य्य-वसानंयस्या 'सा' राधेतिज्ञेयं। अथवा-कं प्रेमसुखं आसमंताच्चिनो-तीति-काचित् [कापितासा सुख्य तमैका-यद्वा-के प्रेम सुखे आसमन्तात् चित् विज्ञानं यस्या सा राधा। इति वृहत्तोषिण्याम्।**

अथवा—कं सर्वेषां प्रेमसुखमाचिनोतिक्षणेक्षणे वर्द्धयति या सा। काचित् कापि परम श्रेष्ठा सा च राधेत्यर्थः इति वैष्णव-तोषिण्याम्। ह्लादिनी शक्ति सार वृत्तिरूपस्य प्रेम्णोऽपि या सप्तमी-भूमिका महाभाव स्तन्मयी श्रीवृषभानु नन्दिनीयमिति। इति चक्रवर्ति-ण्याम्।

उद्धव दर्शन में महाभाव की अवस्था में श्रीराधा जी का वर्णन श्रीशुकदेव जी करते हैं कि—प्रेम सुख में पर्य्यवसान है जिनका ऐसी 'राधा' अथवा प्रेम सुख को संचय करने का स्वभाव है जिनका ऐसी

राधा जो कि उन गोपियों में एक ही प्रधान है। अथवा-प्रेम सुख का सर्व प्रकार से अनुभव प्राप्त है जिसे वह श्रीराधा अथवा सबों के प्रेम सुख को क्षण क्षण में बढ़ाती हैं : वह राधा–ऐसा यह तोषिणीकार ने लिखा है। अथवा ह्लादिनीशक्ति-सार वृत्तिरूप प्रेम की सप्तमी भूमिका को प्राप्त महाभाव में तन्मय अवस्था को प्राप्त वह वृषभानु नन्दिनी 'राधा' हैं। 'काचित्' शब्द की यह व्याख्या चक्रवर्तिपाद ने टीका में की है।

१० —'तत्' शब्द द्वारा राधा-नाम यथा—

महारास लीला वर्णने श्रीशुकः कथयति। तत्रारभत गोविन्देति॥
॥ श्री भा० १०-३३-२॥

गोविन्दः 'रासक्रीणां' तत्र 'श्रीराधा' मनोरथ परिपूरणार्थामारभत। यथाह गोलोके—अघहर कुरु नृत्यमिति।

'तत्' शब्द द्वारा राधा नाम दिखलाते हैं—महारास लीला वर्णन में शुकदेवजी ने कहा है कि–श्रीगोविन्द ने रासक्रीड़ा श्रीराधा जी के मनोरथ पूरण करने लिये आरम्भ की।

श्रीराधा ने गोलोक में कहा कि हे अघहर ! आपकी वह नृत्य चातुरी में देखना चाहती हूँ जिसमें सब गोपी मण्डल में मेरे साथ नृत्य करते हुये एक समय में आपके दर्शन हों, अतएव—'तत्र शब्द यहाँ 'वादरायणि' ने दिया है।

रासोत्सवः संप्रवृते—तासामध्ये—श्री भा० १०-३३-३

तासां राधायां मध्ये–मध्यस्थ मण्डले–द्वयोर्द्वयोः गोपीनां मण्डले। रासोत्सवस्वरूपोकृष्णः। संप्रवृत्तेति [पूर्व मङ्गला चरणे स्वामि पादैः कथितं "रास मण्डल मण्डल"]। इति विशुद्ध रसदीपिकायाम्।

दो दो गोपियों के मध्य और मध्यस्थ मण्डल में श्रीराधा जी के साथ वह रासोत्सव स्वरूप श्रीकृष्ण रास करने लगे। पहिले मङ्गलाचरण में श्रीधर स्वामिपाद ने रास को मण्डन करने वाले श्रीकृष्ण बतलाये हैं। यह रसदीपिकाकार लिखते हैं।

अतः मण्डल मध्यस्थोऽप्येक प्रकाशोज्ञेयः। स एवहि 'श्रीराधिकां'

सङ्गे निधाय वेणु वादन पूर्वकं भ्रमन् सर्व रासमण्डल मत्यर्थं मण्डयति इति तोषिण्याम् ।

अतएव मध्य के मण्डल में भी कृष्ण का एक प्रकाश जानना चाहिये जो कि श्रीराधिका जी को साथ लेकर वंशी बजाता हुआ सब रास मण्डल में नाच रहा है। वैष्णव तोषिणीकार इस प्रकार टीका में लिखते हैं।

तत्राति शुशुभे ताभिरिति—श्री भा० १०-३३-७ **मध्ये—मध्यस्थ मण्डलेत्यर्थः ताभिः 'राधा ललितादिभिरिति शुशुभे ।**

मध्यस्थ मण्डल में 'श्रीराधा' ललितादिकों के साथ रास विहारी की अत्यन्त शोभा हुयी।

पादन्यासैः इति श्लोके 'गायन्त्य स्ता' इति—श्री भा० ॥१०-३३-८॥

'ता' इत्यादरे राधेत्यर्थः । कृष्णवध्वः गोपीगणाः तड़ित इव मेघ चक्रे विरेजुरिति ।

वह श्रीराधा श्रीनन्द-गोप की वधू और गोपीगण 'हल्लीष' नृत्य में बिजली के सहित मेघ की तरह नाचने लगीं। यहां 'ताः' शब्द बहुवचन आदर में जानना चाहिये।

उच्चैर्जगुर्नृत्यमानेति—श्री भा० ॥१०-३३-९॥ **कृष्णाभिमर्श-मुदिता। नृत्यमाना। राधेत्यर्थः । यदा प्रियतम व्रक्ष-स्थले निज प्रतिबिम्बं दृष्ट्वा 'नृत्ये नृत्य कालेत्यर्थः मानवती बभूव। तदा-मुग्धा-नायिकायारालिङ्गनं दत्वा 'सा' मुदिताः बभूवेति। यत् गीतने इदं जगदावृत मिति ।**

महारास में—मध्यमण्डल में श्रीकृष्ण चन्द्र के आलिङ्गन को पाकर जब वक्षस्थल में अपना प्रतिबिम्ब देख मुग्धा नायिका मानवती हुयी, यह जान कर मान शमन करने के लिये श्रीकृष्ण ने उन्हें हृदय से लगाया। उस काल में श्रीजी ने गोविन्द को सुख देने के लिये मधुर गान किया जिस मधुरालाप से संगीत शास्त्र भरा है।

प्रथम रास वर्णनान्ते 'तत्' शब्द द्वारा 'राधा' वर्णितं यथा—तासां तत्सौभगमदमिति —श्री भा० १०-२९-४८॥

तासां-गोपीनां सौभगमदं वीक्ष्य । 'तत्' राधायाः मानोदपं

वीक्ष्य। मदं प्रशमाय। मानं प्रसादाय तत्रैव निकुञ्ज मन्दिरे ताभिस्सहान्तरधीयतेति (अत्र वक्ष्यमाणानुसारेण श्रीराधयैव सहान्तर्द्धानिज्ञेयंइति वैष्णव तोषिण्याम्।

प्रथम रास वर्ण की समाप्ति में 'तत्' शब्द द्वारा श्री शुकदेव-जी ने श्री राधिका जी को ही कहा है जब उन गोपियों का सौभग मद बढ़ा देखा और उन राधा जी में मान का उदय देखा तब 'मद' को शान्त करने के लिए एवं श्रीजी के मान मनाने के लिए वहीं समीप की निकुंज में श्रीकृष्ण छिप गये। यहां प्रसङ्गानुसार श्री राधाजी के साथ ही कृष्ण चन्द्र का अन्तर्द्धान जानना चाहिये। यह वैष्णतोषिणीकार लिखते हैं।

कृष्णान्वेषण काले-गोपीनामुक्तिर्यथा-न लक्ष्यन्तेति-तस्यानून-मिति—श्री भा० ॥१०-३०-३१॥ **तस्या-राधायाः पदानि न लक्ष्यन्तेऽत्र प्रेयसी मुन्नित्येति।**

श्रीकृष्णचन्द्र के ढूढ़ने के समय गोपियां 'तस्या' इस पद से 'श्रीराधा जी' के चरण चिह्नों को न देखकर उन्हें ही इङ्गित कर रही हैं कि—यहां उन श्रीराधा को प्रियतम ने अङ्क में उठा लियाहै।

गोचारण लीलायां-प्रथम मिलने श्रीशुकः 'तत्' शब्देन श्रीराधिकां प्रतिइङ्गितं करोतियथा-पीत्वा मुकुन्देति तत्सत्कृतिमिति श्री भा० ॥ १०-१५-४३॥ **तच्छ्री राधायाः सत्कृतिं सत्कारमधिगम्य-प्राप्य गोष्ठं विवेशेति।**

गोचारण लीला में प्रथम मिलन काल में श्रीशुकदेवजी 'तत्' शब्द द्वारा श्रीराधिका जी के प्रति इशारा करते हैं कि—उन श्री-राधिका के सत्कार को पाकर श्रीकृष्ण गोष्ठ में घुसे।

जनन्युपहृतं प्राश्येति—श्री भा० ॥१०-१५-४६॥ **तौ-गताध्वान श्रमौ। मध्याह्नभिसाराध्वान श्रमौ दिव्यस्रग्गन्ध मण्डितौ। श्री राधा कृष्णौ - इत्यर्थः। पूर्वश्लोके श्रीशुकेन कथितामिति। जनन्यौ यशोदा कीर्तिदेद्वारा स्वाद्वन्न मुपलालितौ। प्राश्य 'संविश्य' चन्द्रिशालिकाया-मिति शेषः। सुखं सुख पूर्वकं। व्रजे गोष्ठे। न सुषुपु मुख्यंतु निकुंज-मन्दिरे। वर शय्यायां। पुष्प शय्यायाम् सूषुपुरिति।**

वह 'श्रीराधाकृष्ण' मध्याह्न अभिसार के लिये किये गए रास्ते

के परिश्रम को दूर कर दिव्य चन्दन माला को धारण कर पूर्व श्लोक में 'तत्' शब्द द्वारा श्रीशुकदेव जी ने इन दोनों के लिये ही इङ्गित में कहा है। माता श्रीयशोदा उधर श्रीकीर्तिदा जी के द्वारा भोजन कर चन्द्र शालिका में दोनों ने विश्राम किया। किन्तु गोष्ठ में आप दोनों को नींद नहीं आयी। संकेत निकुञ्ज में जाकर दोनों सुख पूर्वक पुष्पक शय्या पर जाकर सोये।

श्रीशुकोऽपि श्रीराधिका सह रमणस्य सार्थकतां दर्शयति यथा—रेमतया—श्री भा० ॥१०-३०-३४॥ **तया 'श्रीराधिकाया' सह रेमेति [तया सर्वा विहाय या नीतेत्यर्थः।] 'तया' निर्वचनीय सौभाग्यया-स्मदनुभूतया—इति। इतिवृहत्क्रमसन्दर्भे। मुनीन्द्राभिप्रायः। इति विशुद्ध रस दीपिकायाम्।**

श्रीशुक मुनि व्रज गोपियों के मुख से श्रीराधिका जी के साथ विहार वर्णन कर 'तत्' शब्द से श्रीकिशोरी जी के साथ रमण की सार्थकता दिखाते हैं कि उन श्रीराधिका जी के साथ इस प्रकार वन में आपने क्रीड़ा की [जिन्हें सब गोपियों को छोड़ कर ले गये।] यह वृहत्क्रम सन्दर्भ में टीका में लिखा है। उन अनिर्वचनीय सौभाग्यवाली हमारी स्वामिनी—यह शुकदेव जी का अभिप्राय है। यह विशुद्ध रसदीपिकाकार लिखते हैं।

श्रीशुकदेवने 'तच्छ' द्वारान्यत्रापि 'राधा कृष्णौ' वर्णितौ यथा--एवं तौ लोक सिद्धाभिरिति–श्री भा० ॥१०-१८-१६॥

इत्थं प्रकारेण–व्रजरसोपासनाभिस्सिद्धाभिः रसिकाचार्यैः कथित क्रीड़ादिभिः 'तौ' प्रिया प्रियतमौ' नद्यादि द्रोण कुञ्जेषु काननेषु सरस्सु च वने बने चेरतु।

श्रीशुकदेवजी ने 'तत्' शब्द द्वारा गोचारण विहार में भी श्री 'राधा कृष्ण' के नित्य विहार का वर्णन किया है—इस प्रकार व्रज रस की उपासनामें सिद्ध हुये रसिकाचार्यों द्वारा कही गयी क्रीड़ा द्वारा वह दोनों 'प्रिया प्रियतम' श्रीयमुनाजी की निकुञ्जों में, गोवर्द्धन की तरहटी में प्रेम सरोवरादि जलाशयों के किनारे वन-वन में विहरने लगे।

अतः 'हरिदासोपाधि विशिष्टोद्धवेन' श्रीराधिका महिमा नाम

च तद्वन्द्व द्वारा वर्णिता यथा–क्वेमाः स्त्रियो वनचरीति---

श्री भा० ॥१०-४६-५९॥

इमाः- इति बहुवचनपदं मरभादरेण। श्रीराधेत्यर्थः। या वनमालि मिलनार्थं वनेवधावति सति 'वनचरीः' क्व। वयं व्यभिचार दुष्टान्याभिलाष पुष्टाः क्वेति। या परमात्मनि-परम प्रेमास्पदे सर्वा-कर्षके कृष्णेत्यर्थः। अधिरूढ़ाख्य महाभाव युक्ता 'रुढ़महानुभावा' क्व। द्वौ कौ मददन्तर सूचकौ-इति [वनचरी-वनभ्रमणशीलतात् 'इति चक्रवर्तिण्याम्] (अथवा-इमा भगवत्प्रिया 'क्व' अन्यालौकिक स्त्रियश्च 'क्व'। इति गूढ़ार्थ दीपिकायाम्) अथवा--अवनचरीः–अवने भगवता क्रियमाणे सर्वतोरक्षणे चरन्तीति। यतः गोपीति। इति गूढ़ार्थदीपिकायाम्।

अतएव हरिदास उपाधिसे विशिष्ट श्रीउद्धव जी दे तत् शब्द से भी श्रीराधिका नाम 'तथा' महिमा का वर्णन किया है कि—'ये' बहुवचन आदर में है। वनमाली के मिलन के लिये वन में जाने को आतुर रहने वाली श्रीराधा जो कहाँ और अन्याभिलाष व्यभिचार से दुष्ट हम सब कहाँ ? वह परम प्रेमास्पद सर्वाकर्षक श्रीकृष्ण में अधिरूढ़ नामक महाभाव युक्ता हैं। यहां दो 'क्व' शब्द दोनों व्यक्तियों में बड़ा अन्तर दिखलाता है। 'वनचरी' का अर्थ वन भ्रमण का स्वभाव है जिनका—ऐसा चक्रवर्तिपाद कहते हैं। अथवा—भगवान् के प्रेम की रक्षा के लिये वे सब जगह डोलती रहती हैं। इसी से इनको 'गोपी' कहा। अतः ये भगवत् प्रिया कहां और साधारण लौकिक स्त्री कहां—ऐसा गूढ़ार्थ दीपिका टीकाकार ने लिखा है।

११–'चकार' पद द्वारा राधानाम यथा–

कुरुक्षेत्र मिलनयात्रायां श्रीशुकेन वर्णितम् गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्येति

—श्री भा० ॥१०-८२-४०॥

गोपीगणाः। 'च' कारपदेन श्रीराधिका ग्राह्येति। कृष्णं-उप समीपे लभ्य मानवती वभूवेति।

'चकार' पद श्रीराधा नाम दिखलाते हैं–कुरुक्षेत्र मिलन यात्रा में श्रीशुकदेव जी ने वणन किया है कि—"गोपीगण और चकार पद

से 'श्रीराधिका जी' श्रीकृष्ण चन्द्र को अपने समीप देख कर मानवती हुयीं ।

१२–'वधू' शब्देन राधिका नाम वर्णयति

रासलीलायां–श्रीराधिका प्रेम दर्शनार्थं कृष्णस्यान्तर्धानं श्रीशुकोवर्णयति ततश्चान्तर्दधे कृष्ण सा वधू रन्व तप्यतेति–श्री भा० ॥१०-३०-३९॥

ततः कृष्णः । प्रिया प्रेम दर्शनार्थं मन्तर्दधे । 'सा' वधू राधा । पतिं विना न तिष्ठतीत्यन्व तप्यतेति (सापि सर्व जगदाह्लादिकापि 'वधू' स्तस्य नित्य प्रियभार्यापि—इतिभावविभाविकायाम् ।

'वधू' शब्द द्वारा 'राधा नाम' दिखलाते हैं—रासलीला में राधिका-प्रेम को प्रदर्शन कराने के लिये श्रीशुकदेव जी वर्णन करते हैं कि—श्रीकृष्ण चन्द्र अन्य गोपियों को राधा-प्रेम ज्ञान कराने के लिये जब छिप गये तो वह 'वधू' राधा-पति के बिना नहीं रह सकीं और अत्यन्त विह्वल हो गयीं। वह तो सब जगत् की आह्लाद-कारिणी शक्ति हैं। इसी से 'वधू' शब्द कहा गया है—ऐसा भाव विभाविका टीकाकार लिखते हैं।

तैस्तै पदैः वध्वापदैरिति— ॥श्री भा० १०-३०-२६॥

वध्वाः 'श्रीराधायाः' पद चिह्नैरिति–गोकुले वधूत्वेन प्रसिद्धायाः श्रीराधायाः एव । वृहत्तोषिण्याम् ।

श्रीशुकदेवजी ने गोपियों के श्रीकृष्ण के अन्वेषण काल में कहा है—'वधू'– श्रीराधाके चरण चिह्नोंसे मिले कृष्णचरण-चिह्न उन्होंने देखे।" यहाँ 'वधू' नाम से गोकुल में प्रसिद्ध 'श्रीराधा' ही हैं। यह वृहत्तोषिणीकार टीका में लिखते हैं।

वधू–शब्द से श्रीकृष्ण का श्रीराधा-पाणिग्रहण भी जाना जाता है।

अतः गोपिकागीते– कर सरोरुहं-श्लोके-श्रीकरगृहं ॥ श्री भा० १०-३१-५॥

हे कान्त ! नः शिरसि विरह शमनार्थं करसरोरुहं देहि । कथं-भूतंकरसरोरुहं यः श्रियाः श्रीराधायाः करस्य 'ग्रहो' ग्रहणं येन दत्तं

तं। अनेन कथनेन विवाह संस्कारोपि बभूवेत्यायाति।

गोपिका गीत में भी व्रज देवियों ने–"हस्त कमल हमारे मस्तकों पर रखिये"--कह कर 'हस्त' का विशेषण दिया कि–जिस श्रीहस्त ने राधा जी का हाथ पकड़ा है। इससे यह सिद्ध होता है कि इसका 'विवाह' संस्कार भी श्रीकृष्ण के साथ हुआ है। वधू उसे सज्ञा दी जाती है जिसके साथ 'सप्तपदी' हो अर्थात् सात फेरे पड़े हों।

१३–'प्रिया' शब्देन 'राधा नाम' यथा–

अन्तर्धान-लीलायां श्रीशुकेन कथितं—गतिस्मितरितिश्लोके–प्रिया-प्रियस्येति–श्री भा० ॥१०-३०-३॥ प्रियाः 'श्रीराधेति'। परमादरेण बहु वचनं 'या कृष्ण सङ्गे' सर्वा गोपीगणान् विहाय यस्या संगे विहरतीति। प्रियस्य श्रीकृष्णस्येति 'प्रिया' स्तस्मिन् स्वाभाविक प्रेमवत्यः। इति वैष्णवतोषिण्याम्।

'प्रिया' शब्द द्वारा राधा नाम—अन्तर्द्धान लीला में श्रीशुकदेव जी ने वर्णन किया है--'गतिस्मित' इस श्लोक में—'प्रिया' अर्थात् श्रीराधा जी। यहां बहुवचन आदर में हैं, जो कि श्रीकृष्ण के सङ्ग विहर रही हैं। एवं श्रीकृष्ण सब गोपियों को छोड़कर जिसके साथ विहरते हैं। प्रियतम श्री कृष्ण के चलने बोलने आदि लीला में वह अपने को भूल रही है। यहाँ' प्रिया' शब्द से, वह स्वाभाविक प्रेमवती हैं यह दिखलाया है। ऐसा वैष्णव तोषिणीकार ने लिखा है।

'प्रिया' शब्देन 'श्रीराधिका' गोपीभिः कथितं यथा--अप्येण पत्न्युप-गतः प्रिययेहेति—श्री भा० ॥१०-३०-११॥ अत्र 'प्रियया' राधयेति ज्ञेयमिति [कस्यचिद्गोप्यासहेति] वृहत्तोषिण्याम्।

'प्रिया' शब्द से श्रीराधा को गोपियों ने भी सम्बोधित किया। हे मृगपत्नियो! वह प्रिया–राधा के साथ विहार के लिये गये हैं। किसी गोपी के साथ। यह वृहत्तोषिणीकार लिखते हैं।

बाहुप्रियांस सुपधायेति—श्री भा० ॥१०-३०-१२॥ प्रियायाः 'श्रीराधायाः'। अंसे 'स्कन्धेत्यर्थः' बाहु-उपधाय गतेति (प्रियायाः स्वास्मिन् परम स्निग्धायाः। इति वैष्णवतोषिण्याम्।

'परम प्रिया' श्रीराधिका जी के कंधे पर भुजा रख कर श्रीकृष्ण

निकुञ्ज में गये हैं। यहाँ 'प्रिया' शब्द से गोपियों ने यह दिखलाया है कि श्रीराधा हम सबों से 'परमस्निग्ध' हैं। वैष्णव तोषिणीकार लिखते हैं।

एवमुक्ताः प्रिया माहेति--श्री भा० ॥१०-३०-३७॥ एवं 'प्रियां' श्रीराधामुक्तेति प्रियां राधां स्कन्ध आरुह्यतामिति आह। इति क्रम-सन्दर्भे।

श्रीकृष्ण चन्द्र इस प्रकार 'प्रिया'—श्रीराधा जी से बोले कि—तुम मेरे स्कन्ध पर आरोहण करो। यह क्रम सन्दर्भ में टीका में लिखा है।

१४--'एका' पद द्वारा श्रीराधानाम यथा--

श्रीशुकोक्तिः एकाभ्रुकुटि मावध्येति—श्री भा० ॥१०-३२-६॥ 'एका' मुख्या श्रीवृषभानु नन्दनी राधेति। 'एके' मुख्यान्य केवला इत्यमरः (केचिदेनां राधा माहुः।) इति वृहत्क्रमसन्दर्भे।

'एका' पद द्वारा 'राधानाम दिखाते हैं—श्रीशुकदेव जी श्रीकृष्ण के प्रकट काल में 'एक' पद से 'मुख्य' श्रीवृषभानु कुमारी श्री-राधा जी का वर्णन करते हैं। 'एक' का अर्थ मुख्य है। यह कोषकार लिखते हैं। क्रम सन्दर्भ में भी एका का अर्थ श्री 'राधा लिखा है॥

१५--'आत्म' शब्द द्वारा 'राधा' नाम यथा--

रास लीलायां शुकोक्तिः—कृत्वा तावन्तात्मानं-आत्मरामोऽपि—श्री भा० ॥१०-३३-२०॥ आत्मा-राधेति। 'आत्मातु राधिकातस्येति' स्कान्धोक्तात्। तस्या प्रकाशः गोपीति। तं आत्मानं गोपीमितशेषः। कृत्वा। 'राधा' कृष्ण सङ्गे रमते। 'आत्मा' श्रीराधिका सङ्गे रम-यतीति-आत्मा-रामोऽपि। राधारमणोऽपि। 'लीलाया' लीलास्वादार्थं 'ताभिः' गोपी भिस्सह रेमे आत्मनि तस्या मेव रामोरमणं यस्य सोऽपि लीलया शृङ्गार रस खेलया तत्तन्नायिका रूपेण प्रकटित तया रेमे। तथाहि-उज्वले-निखिल 'नायकावस्था' 'कृष्णे'। निखिल 'नायिका-वस्था' राधायामिति। विशुद्ध रसदीपिकायाम्।

'आत्म' शब्द द्वारा राधा नाम—श्रीशुकदेवजी रास लीला में

दिखाते हैं कि—श्रीकृष्ण की 'आत्मा' श्रीराधिका ही हैं। राधा ही कृष्ण की आत्मा हैं—यह स्कन्ध पुराण में भी कहा है। गोपी होकर श्रीकृष्ण के सङ्ग खेलती हैं और श्रीराधिका रूप आत्मा के साथ श्रीकृष्ण रमण करते हैं। इसी से उन्हें 'राधारमण' कहा है। अर्थात् लीलास्वादनार्थ गोपियोंके साथ आपने क्रीड़ा की (तात्विक विवेचना यह है कि श्रीकृष्ण के स्वरूप में रमण है,) वह भी शृङ्गार रस लीला वर्द्धन के लिये नायक नायिका रूप से प्रकट क्रीड़ा है। उज्वलनीलमणि में लिखा है—जितनी नायिका-अवस्थायें श्रीराधा जी में प्रकट होती हैं—उतनी नायक अवस्थायें श्रीकृष्ण में प्रकट होती हैं यह विशुद्ध रस दीपिकाकार लिखते हैं।

अग्रेऽपिशुकेन लीला परिहारे कथितं यथा—एवं शशाङ्काशु--आत्मन्यवरुद्ध सौरतरिति - श्री भा० ।।१०-३३-२६ ।। सः श्रीकृष्णः कथं भूतः 'यः' आत्मनि राधायां अवरुद्धा सुरत सम्बन्धि रतिर्यस्यसेति आत्मनि परम प्रेमास्पदभूतायां 'श्रीराधा' या मेव अवरुद्धं सौरतं सुरत सम्बन्धि निज सुखं येन सः। इति विशुद्धरस-दीपिकायाम्।

आगे रास लीला के परिहार में श्री शुकदेव जी कहते हैं कि—इस प्रकार वृन्दावन चन्द्र ने चान्दनी रात्रियोंमें विहार किया। वह श्रीकृष्ण आत्मा रूप श्रीराधा में सुरत सम्बन्धी रति से बँधे हुये हैं अर्थात् परम प्रेमास्पदा श्रीराधा के प्रेम में ही जिनकी आसक्ति है। यह विशुद्ध रसदीपिकाकार ने लिखा है।

एवं निगूढ़ात्मगतिरिति—श्री भा० ।।१०-१५-१९।। आसक्ति इत्थं प्रकारेण-निगूढ़ायाः आत्मनः राधिकायाः यस्मिन् गति आसक्ति सः। श्री कृष्णेति।

इस प्रकार छिपी हुयी है 'आत्मा' रूपा 'श्रीराधिका' में आसक्ति जिनकी, वह श्रीकृष्ण हैं।

१६—'व्रजेशसुता' शब्देन 'राधा' नाम यथा—

परमासक्त्या गोपीनामुक्तिः अक्षण्वतामितिश्लोके—वक्त्रं व्रजेशसुतयो रिति—श्री भा० ।।१०-२१-७।। व्रजेश सुता च व्रजेश सुतौ

तयोः। राधा कृष्णयो रित्यर्थः। अनुवेणु जुष्टं 'वक्त्रं' यैननिपीतं तेनैंवाक्षण्वतां फलं प्राप्तमिति। व्रजेशोनन्दः व्रजेशो वृषभानुः व्रजेशश्च व्रजेशावित्येक शेषः पुनः सुतश्च सुता च सुतौ षष्ठी तत्पुरुषः यथा-संख्तया व्रजेशसुतयोरिति। कृष्ण राधयो वक्त्रमिति। क्रमसदर्न्भ ॥

'व्रजेशसुता'—शब्द द्वारा राधा नाम—परम आसक्ति अवस्था में गोपियों द्वारा दिखलाते हैं। अक्षण्वतां—यह वेणुगीत में कहा है कि ब्रजेश श्रीवृषभानु की सुता श्रीराधा और व्रजेश श्रीनन्द के सुत श्रीकृष्ण का अर्थात् श्रीराधा कृष्ण का श्रीमुख जिन्होंने अवलोकन किया है, उन्होंने ही नेत्र पाने का फल पाया है। 'व्रजेशसुत' यहाँ षष्ठी समास से श्रीराधा-कृष्ण के मुख से ही गोपियों का अभिप्राय है। ऐसा क्रमसन्दर्भकार टीका में लिखते हैं।

१७—'सा' शब्द द्वारा राधा नाम यथा—

कृष्णान्तर्धान काले शुकोक्तिः— 'सा' च मेने तदात्मानमिति— श्री भा० ॥१०-३३-३॥ **'सा' राधेति। क्रमसन्दर्भे, 'वरिष्ठं' आत्मानं मेनिरेति।**

क्रम सन्दर्भ टीका में लिखा है कि 'वह' श्रीराधा अपनी आत्मा को अतिश्रेष्ठ मानने लगी।

'सा' वधू अन्वतप्यतेति—श्री भा० ॥१०-३०-२८॥ **'सा' राधा वधू। अतएवान्वतप्यतेति दर्शनैक जीवना। इतितोषिण्यां।**

'वह' श्रीराधा वधू होने से छोड़ने पर दुखी हुयीं क्योंकि श्रीकृष्ण के दर्शनों से ही वह जीवन धारण करती हैं—यह तोषिणी-कार लिखते हैं।

१८—'लक्ष्मी' शब्देन 'राधा' नाम यथा—

वेणु गीते गोपीनामुक्तिः-वृन्दावन मिति श्लोके- यद्देवकीसुत-पदाम्बुज लब्धलक्ष्मीति—श्री भा० ॥१०-२१-१०॥ **हे सखि! वृन्दावनं भुवो कीर्ति वितनोति। यत्-देवकीसुत पदाम्बुजौ प्राप्तिरिच्छया लब्धा 'लक्ष्मी' रूपा राधायेन मिति। यत्र गोविन्द वेणुं श्रुत्वा मत्तो मयूरो**

नृत्यति 'मत्तमयूर नृत्यं दृष्ट्वा' गोविंदोऽपि नृत्यति गोविन्द नृत्यन्तं

दृष्ट्वा अनुपश्चात् सापि मत्तमयूर नृत्यं नृत्यतीति (मयूर कुटचां वृषभानुपुरे दृष्टव्यं) अथवा-देवकी सुतस्य कृष्णस्य पादाम्बुजाभ्यां चरण चिह्नादीन प्राप्त्यर्थं तत् लीला सम्पादनार्थं लब्धा प्राप्ता लक्ष्मी-राधा यस्मैः। व्रजे भगवतः क्रीड़ार्थमेव आह्लादिनी शक्तिः राधा प्रकटिता इत्यर्थः। रमा क्रीणमभूदिति [वा। कृष्णस्य पादाम्बु-जाभ्यां प्राप्तां लीलादि सम्पत्तमः येन इति स्वामिपादैः।

'लक्ष्मी' शब्द द्वारा राधा नाम—"वृन्दावन" आदि श्लोक में वेणुगीत में व्रज देवियों की उक्ति में कहा है—हे सखि ! श्रीवृन्दावन पृथ्वी की कीर्ति को बढ़ाता है, जो कि देवकी नन्दन अर्थात् उन 'यशोदानन्दन' की पदाम्बुज की इच्छा करने वाली हम सब जहां 'लक्ष्मी' रूपा 'श्रीराधा' को पाकर गोविन्द के सहित कृत कृत्य हुयी हैं। जहाँ श्रीगोविन्द की वेणु को सुनकर मतवाले मयूर नृत्य कर रहे हैं। मत्त मयूरों को नृत्य कराते हैं उनके नृत्य के पश्चात् वह हमारी सखि भी नृत्य करती है (बरसाने में 'मयूर कुटी' पर वह 'नृत्य' चित्र पट रूप से अब भी विराजमान है।) अथवा—कृष्ण-पदाम्बुज प्राप्ति निमित्त या उस लीला के सम्पादनार्थ ही लक्ष्मी रूपा राधा प्रकट हुई है, अर्थात् व्रज में भगवान् के क्रीड़ा के लिये ही आह्लादिनी शक्ति 'राधा' प्रकट हुयी हैं। इसी से शुकदेव जी ने 'रमाक्रीड़ा' शब्द कहा। अथवा श्रीकृष्ण चरणों से प्राप्त हुयी है लीला सम्पत्ति जिन्हें वह राधा। ऐसा श्रीधर स्वामिपादने लिखा है।

१६—'सखी' शब्देन राधा नाम यथा—

कृष्णान्वेषण काले शुकोक्तिः—अन्विछन्त्येतिश्लोके-मोहितां दुःखितां सखीमिति—श्री भा० ॥१०-३०-४०॥ **गोप्यः 'कृष्णं' अन्वि-छन्त्यः। सखीं 'श्रीराधा' मित्यर्थः ददृशुरिति। क्रमसन्दर्भे पितया।**

'सखी' शब्द द्वारा श्रीराधा-नाम कृष्णान्वेषण काल में—श्रीशुक-देव जी ने कहा है कि—गोपीगण ने कृष्ण चन्द्र को ढूँढ़ती हुयी अपनी प्रिय सखी श्री 'राधा' जी को देखा। यही बात क्रम सन्दर्भ में भी लिखी है।

वृन्दावनंसखीति—श्री भा ॥१०-२१-१०॥ **हे सखीति—श्रीकृष्ण प्रदत्त तदाधिपत्येन तवतु परम धन्यतैवेति भगवतीं राधां प्रति**

कृतसान्त्वनमिदं सम्बोधन मिति। इति बृहत्तोषिण्याम्।

हे सखी 'राधे'! श्रीकृष्ण ने व्रज वीथी के संरक्षण का तुम्हें अधिकार दिया है, अतएव तुम परमधन्य हो—यह गोपियों का श्री-राधा जी के प्रति सान्त्वना दान के लिये सम्बोधन है। ऐसा वृह-त्तोषिणीकार लिखते हैं।

अतः श्रीशुकदेवेन तच्छब्दादि द्वारा-इङ्गितेन राधानाम कथितं यथा यद् गीतेनेदमावृतिमिति—श्री भा० ॥१०-३३-९॥ **यद् गूढ़रूपेण कथित चरित्रेण—'श्रीराधानाम' कथनेन-इदं भगवच्छास्त्रं—श्रीमद्भागवतं-पुराणं—आवृतं परिपूर्णमस्ति। यत् कर्मकेन गीतेनेति। कथितं चक्र-वर्तिपादैः।**

अतेवाग्रे---

१. वेदद्वारा, २. उपनिषदद्वारा, ३. तंत्रद्वारा, ४. आगमद्वारा, ५. पुराणद्वारा, ६. रसशास्त्रद्वारा, श्रीराधातत्वं ज्ञातव्यमिति तात्पर्यार्थः।

इस प्रकार श्रीशुकदेव जी ने 'तत् शब्दादि' द्वारा इशारे से श्रीराधा-नाम कहा। श्रीमहारास लीला वर्णन में भी—गूढ़रूप से कथित चरित्र द्वारा यह भगवत् प्रतिपादित श्रीमद्भागवत महापुराण-'श्री स्वामिनी राधा जी' से 'आवृत' है—अर्थात् प्रिया प्रियतम के चरित्र से भरा हुआ है। चक्रवर्तिपाद टीका में लिखते हैं।

अब आगे—

१. वेद द्वारा, २. उपनिषद द्वारा, ३. तंत्र द्वारा, ४. आगम द्वारा, ५. पुराण द्वारा ६. रसशास्त्र द्वारा। 'श्रीराधातत्व' जानना चाहिये यह तात्पर्यार्थ है।

श्रीभागवत चतुःश्लोकी द्वारा—ऐकान्तिक भक्तान् प्रति श्री-प्रभु राधा तत्वं कथयति यथा—

ज्ञानं परम गुह्यं मे यद्विज्ञान समन्वितं।
सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया॥

श्री भा० ॥२-१०-३०॥

'परं' च 'रमां' च। परमां। 'तं' परमं-राधातत्वं परम गुह्यं मे मतः। हे ऐकान्तिक भक्ताः। गृहाण। यत्तत्वं विज्ञान समन्वितं—अर्थात् यावत् 'राधैवाराध्यते मया' ज्ञानं जीवस्य न भवति

तावत्पर्य्यन्तमाराधनीय पदार्थस्य ज्ञानं न भवतीति तात्पर्य्यार्थः । 'तत्' राधातत्वं रहस्यं भक्ति सम्वलितं । कथितं स्वामिपादैः- रहस्यं भक्तीति । तच्छ्री राधायाः-'अङ्ग' तस्या सहचरी रूप मञ्जर्यादयः । मया रहस्य भक्त्या । अथवा-मया राधा-अनुग्रहा शक्त्या गृहाणेति ।

यावानिति—यावान् यत् परिमाणकानन्द स्वरूपोऽहं । यथा-भावविभाद्यनुभावैः ज्ञास्यते । यद्रूप गुण कर्मकोऽहं । तथैव 'ते' तव मदनुग्रहा शक्त्या मम 'राधया द्वारा'—'विज्ञान शक्त्या' कृष्णतत्व ज्ञानं-अस्तु ।।३१।।

अहमवैति--'अग्रे'जगदिति-अहमेव-आं-राधामित्यर्थः । आसमेव । अन्यत् 'सत्, सूक्ष्मं 'असत्' स्थूलं न । पश्चादहं 'यदेतत्' राधां 'च' योऽवशिष्येत' सा राधात्व सहित-अहमस्मि । शक्ति शक्तिमन्तो अभेदत्वादिति ।।३२।।

ऋतेऽर्थमिति—अर्थं 'मम' परमार्थ तत्वं । ऋते । यत्प्रतीयते । आत्मनि 'तां' विना न प्रतीयेत । तदात्मनोमायां तद्राधां ममेच्छा-शक्ति विद्यात् । 'आत्मशक्ति तदिच्छास्यात्' । इति विष्णुपुराणेति । यथा 'बचच' तस्या वहिरङ्गा शक्तिराभास रूपा 'माया' तम रूपा त्रिगुणात्मिकेति ।।३३।।

यथा महान्तीति—यथा महत्तत्वादि पञ्चमहाभूतादीनि प्रविष्टान्य प्रविष्टानि । तथैव 'मम' राधा स्वरूपं लीलार्थं मप्रविष्टानि । तत्वे शक्ति शक्ति मानस्येति । प्रविष्ठानि एकी भूतानि । तथा तेषु तेषु अवतारि स्वरूपेषु । अहमिति सा पीति न इतिनः अपित्वत्येवेति भावः ।।३४।।

एतावदेवेति—'तत्वजिज्ञासुना' गुरोस्सकाशा देतावदेव राधा-भाव पर्य्यन्त मेव । जिज्ञास्यं जिज्ञासनीयं । 'यः' अन्वयः आह्लादिनी शक्तिर्राधा स्यात्तर्हि आनन्द स्वरूपो गोविन्दोऽपिस्यात् । 'व्यतिरेकः' यदि-आह्लादनोनस्यात्तर्हि-आनन्दस्याधिष्ठान मपि न स्यात् । 'अतः' अन्वय व्यतिरेकाभ्यां यः राधाकृष्णौ सर्व्वदा सर्वत्रस्यादेवेति ।।३५।।

एतन्मतं समातिष्ठेति—'एतन्मम मतं सः श्रीकृष्णः मां राधां आलम्बनतः तिष्ठतीति-तिष्ठ । 'परमेण समाधिना' उपासनादिना ।

'भवान्' इत्यदरैकान्तिक भक्तान्प्रति वचन। कल्प विकल्पेषु कर्हिचित् 'न' विमुह्यतीति ॥३६॥

'श्रीभागवत चतुश्लोकी द्वारा' ऐकान्तिक भक्तों के प्रति श्री-प्रभु 'राधातत्व' कहते हैं कि—'पर' मैं, 'परमा'–श्रीराधा के सहित 'परमतत्व' अर्थात् श्रीराधा कृष्ण तत्व परम गुह्य है। हे ऐकान्तिक भक्तो ! उसे मुझसे ग्रहण करिये। जो तत्व विज्ञान समन्वित है अर्थात् जबतक 'राधिकाही मेरी आराध्या हैं–यह निष्ठा जीवकी नहीं होती, जब तक आराधनीय पदार्थ का ज्ञान नहीं होगा, यह तात्पर्य्यर्थ है। वह 'राधातत्व' रहस्य है यानी भक्ति सम्वलित है। इसी से स्वामी-पाद ने 'रहस्य' का अर्थ 'भक्ति' कहा है। उन श्रीराधा का 'अङ्ग' उनकी सहचरी रूप मञ्जरी प्रभृति हैं। उन्हें मेरी रहस्य भक्ति के द्वारा—अथवा–राधारूपी 'अनुग्रह शक्ति' के द्वारा ग्रहण करिये।

जिस परिमाण का मैं आनन्द स्वरूप हूँ, जिन भाव विभाव अनुभावादि सञ्चारी भावों से मुझे जाना जाता है, जैसे कि मेरे रूप कर्म हैं। 'वह सब मेरी' अनुग्रह शक्ति श्रीराधा जी के द्वारा—विज्ञान शक्ति से मेरे तत्व का तुम्हें ज्ञान हो।

इस जगत् के पहिले 'श्रीराधा' और मैं ही था। अन्य 'सत्' सूक्ष्म असत् स्थूल कुछ नहीं था। जगत् के पीछे 'मैं' और ये 'राधा' ही वाकी रहती हैं। उस राधा और मुझमें—शक्ति-शक्तिमान्में अभेद होने से सब मैं ही हूँ। मुझ परमार्थ तत्व की बिना राधा के प्रतीति नहीं होगी। उस श्रीराधा को मेरी 'इच्छाशक्ति' जानिये। 'आतम-शक्ति इच्छा को कहते हैं' यह विष्णु पुराण में भी लिखा है। जिसकी बहिरङ्गा शक्ति 'आभास' रूपा माया है एवं 'तम' रूपा त्रिगुणात्मिका है।

जैसे कि महत्वादि पञ्चमहाभूत मिले हुए और अलग भी देखने में आते हैं। उसी प्रकार मेरा राधा का स्वरूप लीला के लिये अलग है। तत्व में शक्तिमान की 'शक्ति' होने से वह एक है। इसी-लिये सब अवतारों में अवतारी स्वरूप से 'मैं' और वह 'श्रीराधा' विराजमान हैं।

तत्व जिज्ञासु साधक को श्रीगुरु के सान्निध्य में 'महाभाव'

पर्य्यन्त ही जिज्ञासनीय पदार्थ है। जो कि "अन्वय" यानि-आह्लादन शक्ति राधा हैं तो आनन्द स्वरूप गोविन्द भी हैं। 'व्यतिरेक' यदि आह्लाद नहीं है तो आनन्द का अधिष्ठान भी नहीं है। अतः अन्वय व्यतिरेक से श्रीराधा-कृष्ण सर्वदा सर्वत्र विराजमान हैं।

यह मेरा मत है—कि उन 'श्रीराधा-कृष्ण' को परम समाधि यानी सिद्ध देह से अपने हृदय में रखिये। 'भवान्'! यह आदरमय वचन एकान्ती भक्तों के प्रति है। कभी भी कल्प विकल्प में मोह को नहीं प्राप्त होवोगे।

यथा 'श्रीराधा तत्वं' भगवतैकान्तिकभक्तमुद्धवं प्रति कथित—ता मन्मनस्केति—श्री भा० ।।१०-४६-४।। श्लोकतः ६ पर्य्यन्तम्। इत्यादरे ता राधेति। मय्येव सङ्कल्पात्मकं मनो यासां ताः। अहमेव प्राणो यासां ताः। मदर्थेत्यक्त्वा दैहिकाः पतिपुत्रादयो याभिस्ता यन्निमित्तं त्यक्तौ लोकधर्माविहामुत्र सुखे तत्साधनानि च यै स्तान् विभर्मिपोषयामि सम्बन्धर्यामिसुखयामीत्यर्थः। इतिभावार्थदीपिकायाम्।

यतस्ताः गोकुल स्त्रियः (मदीय दर्शन मात्र जीवना इतितोषिण्याम्) हे अङ्ग! प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे मयि-प्रत्यागमने मास दृष्ट्वा तस्य कष्टोभविष्यतीति-यतः तत्सुखसुखित्व भाव मह्येयं [विरहेणौत्कण्यतेन विह्वला पर वशाः इत्येषा] प्रेमवशाः इत्यर्थः। लीलां स्मरन्त्यः विमुह्यन्ति—मूर्छा प्राप्नुवन्ति मद्भावनामपि कर्त्तु न शक्नुवन्तीति भावः—इतितोषिण्याम्।

गोकुलान्निर्गमकाले शीघ्र मागमिष्यामीति ये प्रत्यागमन सन्देशा स्तैः। मे मदीया बल्लव्यः (श्रीराधेत्यर्थः) मदात्मिका (मत्स्वरूप-शक्तिरित्यर्थः इति तोषिण्याम्) तासामात्मा यदि स्वदेहे स्यात्तर्हि विरह तापेन दह्येतैव तस्य मयि वर्तमानत्वात्कथं विज्जीविन्तीति भावः। इति भावार्थ दीपिकायाम्।

भगवान् कृष्ण एकान्ती भक्त उद्धव जी के प्रति 'श्रीराधातत्व' कहते हैं कि—उन 'श्रीराधा जी' का मन मेरा ही संकल्प करता है। मैं ही जिनका प्राण हूँ। उन्होंने मेरे लिये ही दैहिक पति पुत्रादि सम्बन्ध त्याग दिये हैं। मेरे निमित्त लोक धर्म जिन्होंने त्याग किये हैं,

उनका मैं पोषण पालन करता हूं। यह स्वामिपाद टीका में लिखते हैं।

यह गोकुल की स्त्री हैं (मेरे दर्शनसे ही जीती है-यह तोषिणी-कार लिखते हैं) प्रिय वस्तुओं में प्रिय मैं दूर हूँ—अतः लौटने पर मुझे न देखकर उन्हें कष्ट होगा क्यों कि यह 'तत्सुख सुखित्व' भाव वाली हैं। विरह से उत्कण्ठित होती हुई भी परवश हैं. अर्थात् प्रेम वश हैं। लीला का स्मरण कर मूर्छा को प्राप्त हो रही हैं। मेरी भावना करने में भी असमर्थ हैं। यह तोषिणीकार लिखते हैं।

व्रज से मथुरा जाने के समय में जल्दी ही आऊँगा यह संदेश स्मरण कर मेरी प्रिया होने के नाते 'मदात्मिका हैं' अर्थात् मेरी स्वरूप शक्ति हैं—यह तोषिणीकार लिखते है। उनकी आत्मा यदि देह में होती तो भस्म हो जातीं, मेरे पास होने से वे जीती होंगी, यह स्वामिपाद लिखते हैं।

अग्रे तटस्थलक्षण द्वारा श्रीराधा तत्वं श्रीपरीक्षितं प्रति शुको कथयति यथा—तन्मनस्केति—श्री भा० ॥१०.३०-४४॥

या—तन्मनस्क-स्तदालया—स्तद्विचेष्टा—स्तदात्मिका तद्-गुणान्येव गायन्त्यः-नात्मागाराणि स्मरन्ति सा राधेरि [स 'कृष्णेव' आत्मा यासां ताः तन्मय्य इत्यर्थः—इति भावार्थ दीपिकायाम्।

राधा-तत्व को तटस्थ लक्षण द्वारा परीक्षित के प्रति श्रीशुकदेव-जी कहते हैं जिसका मन कृष्ण का स्मरण करता है, वाणी कृष्णालय करती है, जो कुछ शारीरिक चेष्टायें है, वे कृष्ण निमित्त हैं। श्रीकृष्ण के साथ जिसका ऐक्य है जो संसार को कृष्णमय देखती हैं, उसे 'राधा' कहते हैं। श्रीराधा कृष्ण की आत्मा हैं एवं तन्मयी आह्लादनी शक्ति हैं। ऐसा श्रीधर स्वामि टीका लिखते हैं।

अतएव वैष्णवाचार्य कथितं यथा—स्तस्य द्वारा कृष्णाराधन प्रादुर्भावः। रम्या काचिदुपासना व्रज वधू वर्गेण या कल्पिता।

श्रीशुकोऽपि तस्याचार्य्यत्वमग्रिम श्लोके दर्शितं] यथा—पुनः पुलिन मागत्येति—श्री भा० ॥१०-३०-४५॥ **पुन पुलिन मात्येति–'श्री-वृन्दावन वासः' भक्ते रङ्ग दर्शितं। कालिन्द्या कृष्ण भावनेति—'मूर्ति-सेवा कौशलं' भक्ते रङ्गं दर्शितं। समवेतेति-रसिकैस्सह श्री-भागवतार्थास्वादः भक्ते रङ्गं दर्शितं। जगु कृष्ण मिति—नाम-**

संकीर्तनं भक्तेरङ्गं दर्शितं। तदागमनकांक्षिता—सजातीय स्निग्ध महत्तर साधु सङ्गः भक्तेर्मुख्य पञ्चाङ्ग दर्शितमिति।

अतएव वैष्णवाचार्यों ने, 'श्रीराधाजी' के द्वारा ही श्रीकृष्ण की आराधना प्रकट हुयी है,—ऐसा कहा है। यह 'रम्य' उपासना ब्रज वधूवर्ग से ही कल्पित हुयी है।

श्रीशुकदेव जी ने भी कृष्णान्वेषण काल में श्रीस्वामिनी जी को ही आचार्य्यपद दिया है यह आगे के—'पुनः पुलिन' श्लोक द्वारा दिखाया है।

श्रीराधा गोपियों के साथ पुनः श्रीयमुना पुलिन में आयीं। इससे 'श्रीवृन्दावन वास भक्ति का मुख्य अङ्ग दिखलाया। श्री-कालिन्दी जीं में कृष्ण भावना की—इससे 'मूर्ति सेवा में कौशल' भक्ति का अङ्ग दिखलाया। सब इकट्ठी होकर बैठीं। इससे रसिकों के सहित श्रीभागवतार्थास्वाद-भक्ति का अङ्ग दिखलाया। 'कृष्ण के गुण गाने लगीं' इससे 'नाम सङ्कीर्तन' भक्ति का अङ्ग दिखलाया। 'सब कृष्ण के आगमन की आकांक्षा में उत्कण्ठित हैं' इससे 'सजातीय स्निग्ध महत्तर साधुओं का सङ्ग' आवश्यक है—यह भक्ति का अङ्ग दिखलाया।

किम्बहुना—कृष्ण विरहे यमुनापुलिने श्रीवृषभानु नन्दिन्याः 'तत्सुखिसुखित्व' भावस्य पराकाष्ठा दर्शिता यथाह—यत्तेसुजात मिति —श्री भा० ॥१०-३१-१९॥ हे प्रिये ! यत्-ते-तव सुजात चरणाम्बुहं-कर्कशेषुहृदयेषु भीता तव सुखदानार्थशनैः—दधमिहि। तेन चरणेन अटवीं कूर्पादिभिः। स्वित् किं न व्यथते। तच्चरणं कोमलत्वात् व्यथतेव। नः अस्मान् धीर्भ्रमति। आयुषां गृहीत्वा अत्र व्रजे त्वं चिरजीविभवेति वाक्यसमाप्तिः। इयं प्रलापोक्तिः श्रीराधा यामवेति। [सर्वान्ते वचनमिदं श्रीराधा देव्याः—इति तोषिण्याम्।]

'विशेष क्या कहा जाय' कृष्ण विरह में यमुना पुलिन में श्रीवृषभानुनन्दिनी जी ने 'तत्सुखिसुखित्व' भाव की पराकाष्ठा दिखला दी है—'यत्तेसुजात' इस श्लोक में उन्होंने कहा है—हे प्रियतम् ! आपके चरणकमल अति सुकोमल हैं, हम उन्हें अपने कर्कश हृदयपर कहीं आपको लग न जायें'—यह समझकर धीरेधीरे धारण

करती हैं। उन चरणों से वृन्दावन की कठिन भूमि पर आप घूम रहे हो। क्या आपको व्यथा नहीं होती होगी? अवश्य व्यथा होती ही होगी। इन बातों का स्मरण कर हमारी बुद्धि भ्रम में पड़ी हुयी है। अब हम सबों की आयु पाकर आप इस व्रज में चिरजीवि होवो। यह प्रलापोक्ति श्रीवृषभानुनन्दनी श्रीराधाजी की ही है। यह तोषिणीकार भी लिखते हैं।

तस्मान्मुख्यं 'स्वरूप लक्षण' द्वारा 'राधा तत्वं' दर्शयिष्यते यथा—

आनन्द चिन्मय रस प्रतिभाविताभिः,
स्ताभिर्य्यएव निजरूपतया कलाभिः।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्म भूतो,
गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि॥

ब्रह्म संहितायां पञ्चमाध्याये।

आनन्द चिन्मय रस प्रति भाविता। श्रीराधेत्यर्थः। आनन्द चिन्मयो 'यो' रसः परम प्रेममय—उज्वलनामा तेन प्रतिभाविता। प्रति शब्देन पूर्वं भावितः पश्चात् वासित रिति कलाभिः आह्लादन शक्तिभिः अतएव–निज रूपतया। स्वदारत्वेन विराजतेत्यर्थः। या 'राधा'। गोलोकेव निवसति [गोलोक भौम वृन्दावनमभेदत्वात् गोलोक शब्दं दत्तं] अखिलानां गोलोक वासिनां—परमप्रेष्ठतया आत्मभूतः। तं आदिपुरुषं गो-राधेन्द्रियाणां वसते गोविंदं अहं भजामीति [(श्रीपादजीव गोस्वामिना) दुर्गम संगमिन्या टीकायाम् कथितं।]

इससे मुख्य 'स्वरूप लक्षण' द्वारा 'राधा तत्व' दिखलाते हैं जैसे कि 'ब्रह्म संहिता' के पञ्चमाध्याय में कहा है—

'आनन्द' चित्शक्ति करके युक्त परम श्रेष्ठ 'उज्वल रस' से जो प्रतिभावित हैं यानी पहले भावना फिर उनमें प्रेम का सार आ गया—जैसे पुष्प का सार, उसे 'राधा' कहते हैं। जो कि आह्लादन शक्ति रूपा हैं, अतएव दारा रूप से (स्वकीया होकर) श्रीकृष्ण के वाम भाग में विराज रही हैं। जो श्रीराधा गोलोक-ब्रज में ही रहती हैं [यहां 'गोलोक' और भौम वृन्दावन में अभेद होने से गोलोक

शब्द दिया है] अखिल व्रजवासियों की लाड़िली हैं। इसी से सब इन्हें 'लाड़िली जी' कहते हैं। वे आदिपुरुष उन श्रीकिशोरी जी की अखिल इन्द्रियों में विराजते हैं, इससे इन्हें गोविन्द कहा जाता है। उनका हम भजन करते हैं।

२०—वेदद्वारा श्रीराधा यथा—राधापद वाच्य (ऋग्वेदे मन्त्राः)

राधया माधवो देवो माधवेनैव राधिका विभ्राजन्ते जनेष्वा–इति—

—'ऋग्वेद' परिशिष्ट श्रुतौ—

विभ्राजन्ते विभ्राजते आसर्वत इति श्रुति पदार्थः। क्रमसन्दर्भः।

श्रीराधा द्वारा माधवदेव एवं माधव द्वारा ही श्रीराधिका सब प्रकार से शोभित हैं।

तथाच श्रुतिः रूपं रूपं प्रति 'रूपो' वभूव-ऋग्वेद-मण्डल ६, सूक्त ४७ ऋक् १८। शतपथ ब्राह्मण १४-५-५ वृहदारण्ये ॥ २-५-२६॥

श्री आनन्द स्वरूपस्य 'रूपं' आह्लादकत्वं श्रीराधा। तस्या रूपं सहचर्य्यः। तस्या पोषकत्व धर्म विशिष्टं 'प्रतिरूपो' मञ्जर्य्या-दयः। सः श्रीकृष्णैव लीला सम्पादनार्थं मनन्तं वभूवेत्यर्थः। 'यथार्भ-कस्य प्रतिबिम्ब विभ्रमः' इति श्रुत्यर्थेति भागवत संहितायाम्।

वेद भगवान् के इस वाक्य को श्रुति और स्पष्ट करती है कि—आनन्द स्वरूप श्रीकृष्ण का 'रूप' आह्लाददायी श्रीराधा हैं। उनका दूसरा 'रूप' सहचरी गण हैं। उन श्रीललितादि सखियों का पोषण करने वाला 'प्रति रूप' मञ्जरी गण हैं। यह उसी श्रीकृष्ण लीला सम्पादन के लिये अनन्त रूप हुये हैं 'यह तात्पर्य्यार्थ हैं'। इसी श्रुत्यर्थ को भागवती संहिता—जैसे बालक अपने प्रति-बिम्ब के साथ खेलता है। यह कहकर विशद वर्णन करती है।

तस्याद्या प्रकृती 'राधिका' नित्या निर्गुणा सर्वालङ्कार शोभिता प्रसन्नाऽशेषलावण्य सुन्दरी अस्मदादीनां जन्मदात्री अस्या अंशांश बहवो विष्ण रूद्रास्यो भवन्तीति।

तथार्थवाणि-पुरुष बोधन्या द्वादशवन वर्णन प्रस्तावे कथितिमिति—अस्यार्थः—तस्या पर ब्रह्मणः आद्या प्रकृतिः आद्यं स्वरूपमित्यर्थः। कासावित्यत आह। राधिका आराध्य मम नाम्नापि विज्ञेया। तेन राधिकेति। श्रीकृष्णयामल निर्वचनानुसारेणा भेदाध्यवसायाच्छक्ति शक्ति मत्वंपरास्तं। नित्याकालत्रयेऽप्येकरूपा। निर्गुणा मायागुणातीता। सर्वालङ्कार शोभिता—सात्विकैराङ्गिकैश्चालङ्कारैः स्वरूप भूतैरेव शोभिता। अथवा—सर्वालङ्कारः श्रीभगवान् तेन नित्य पार्श्वस्थेन शोभिता। प्रसन्ना—आनन्दिता शेषं स्पष्टं। अंशांशाः। गुण त्रयाधिष्ठातारः हरिविरिञ्चिहरादयः। अधिष्ठानाधिष्ठेययोर भेदाभि प्रायेणे दमिति संक्षेपः। विशुद्ध रस दीपिका टीकोक्त 'आस्मरत' श्लोक व्याख्यायां मध्ये।

'अथर्व वेद' के 'पुरुष वोधनो' द्वादश वन वर्णन प्रस्ताव में लिखा है कि—उन 'परब्रह्म' की आद्याप्रकृति-यानी 'आद्यस्वरूपा' श्रीराधा हैं, जो कि हमारी आराध्य हैं। यहाँ 'कृष्णयामल' के वचनानुसार शक्ति शक्तिमान में अभेद होने से यह कहा गया है—वे तीनों काल में एक रूप हैं। माया के गुणों से अतीत हैं। स्वरूप भूत सात्विक अलङ्कारों से युक्त हैं। अथवा—सर्वालङ्कार भगवान् श्रीकृष्ण के वाम भाग में विराजमान हैं। परमानन्द स्वरूपा जिनके अंशांश तीनों गुणों के अधिष्ठान गुणावतार हैं (यहां भी अधिष्ठान अधिष्ठेय में अभेद होने से यह कहा गया है) विशुद्ध रस दीपिका टीका में रेमेतया श्लोक व्याख्या में ऐसा लिखा है।

अतारिषुर्भरत गव्यवः सम भक्त विप्रः सुमिति नदीना प्रपिन्वध्व मिषयन्ती सुराधा 'आवक्षाणाः' पृणध्वं यात शीभ ॥ऋग्वेद संहिता—१७९ पृष्ठ मण्डल ३ अनुवाक् ३ सूक्त ३३ ऋचा १२ ॥

सेयंराधा ऋग्वेदे—राधाकृष्णे ५ पृष्ठ मन्त्र भागवते च।

अथ विश्वामित्रो नदी समुद्रापदेशेन गोपीः प्रत्याभिसारयति यूयं इषयन्ती। इच्छन्त्येर्थः। सुराधाः शोभना मुख्या राधा यासु ताः। श्रीराधाया मुख्यत्त्वं-ब्रह्मवैवर्त-पद्मपुराणोत्तरखण्डे प्रसिद्धम्। केचित्तु सुराधा इत्यस्य सुराधसमिति व्याख्यानं कुर्वंते तेषां सुराधः शब्दस्य सां तत्व-कल्पने 'प्रसिद्धेन गोपिका यः सुराधा' इतिवेदके वचनान्त

समभि व्यावहारादिकं निमित्तं नास्ति। विशेषतस्तु बहुवचनान्त स्त्रीलिंग समभि व्याहारात् सुराधा शब्दः आवन्त एव। स्तोत्रं-राधानां' यत इत्यादौस्वरान्तस्यापि स्पष्टं दर्शनात्। इति नील कण्ठी टीकायाम्।

मन्त्र भागवत में—विश्वामित्र ऋषि नदी गणों को समुद्र से मिलने के व्यपदेश से गोपी गणों का कृष्ण के प्रति अभिसार वर्णन करते हैं—

यहाँ मन्त्र में 'यूयं इषन्ती' इस पद से आप लोग कृष्ण से मिलना चाहती हो, यह अर्थ होता है। 'सुराधा' पद से शोभायमान है 'राधा' जिन गोपियों में यहाँ यह अर्थ है। श्रीराधा जी का मुख्यत्व ब्रह्मवैवर्त-पद्मपुराण के उत्तर खण्ड में प्रसिद्ध है। किसी-किसी ने सुराधा का अर्थ सुराधस् कहा है पर स्त्री लिङ्ग प्राधान्य होने से ही है। यह नील कण्ठी टीका में लिखा है।

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः

तत् विष्णोः 'श्रीकृष्णस्य' रासमण्डले सर्वत्र विद्यमानत्वात् विष्णुर्नाम्न प्रसिद्धं। परं च परतत्वं रमारूपा राधां च पदंस्थानं 'रसाश्रयां'। सदा सर्वदेति 'सूरयेः' राधा कृष्णोपासकाः एक रूपमिति तात्पर्य्यार्थः। पश्यन्तीतिदिक्। ऋग्वेद संहितायां १ अष्टके २ अष्टकं वर्ग ७ मण्डल १ अनुवाक् ५ सूक्त २२ ऋक् २०/२१।।

उन विष्णु को जो कि रासमण्डल में सर्वत्र विराजमान होने से विष्णुनाम से प्रसिद्ध हैं। उनकी परतत्व रमा रूपा श्रीस्वामिनी राधाजी को रसाश्रय अर्थात् उस पद स्थान पर सदा सर्वदा राधा कृष्णोपासक भक्त एक रूप देखते हैं।

२१—यजुर्वेदे च 'राधस' पदवाच्य मन्त्राः यथा—

उभा वामिन्द्राग्नीऽआहु वध्वाऽउभा राधसः सह मादयद्धयै।
—यजुर्वेद ७ अध्याय

श्वात्राः स्थ वृत्रतुरो 'राधो' गूर्ताऽअमृतस्य पत्नीः।
—यजुर्वेद ७ अध्याय

आन इन्द्रो हरिभि यात्वच्छावाचीनोऽवसे 'राधसे' च।
—यजुर्वेद २० अध्याय

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्या वहो राश्रये।
—यजुर्वेद ३१ अध्याय २२ मन्त्रः

इत्यत्र तथा च-रमा सत्यभामा राधिकाभिः स्वासाधारणान-पायिनिभिः पत्नीभि रुपास्यो भगवान् वासुदेवो श्रीकृष्णाख्यं परंब्रह्म पुरुषोत्तम इति (राधाकृष्ण भूषणें पृ० ६)

[राधा शब्दस्य व्युत्पत्ति सामवेदे प्रकीर्तिता]
इति ब्रह्म वैवंते—

२२—सामवेदे 'राधस' पदवाच्य मन्त्राः यथा—

इदं ह्यन्वो जसासु तं 'राधानां' पते। —सामवेद २ प्रपाठक
आशिषे राधसे महे। —सामवेद ३ प्रपाठक

ब्राह्मणा दिन्द्र राधसः पिवा सोममृतूँ रनु।
—सामवेद ३ प्रपाठक

अभि प्रवः सुराधसमिन्द्र मर्च यथा विदे।
—सामवेद ३ प्रपाठक

प्रवाहू शूर राधसा। —सामवेद उत्तरार्चिक १ प्रपाठक २

[अत्र शूरेण कृष्णेन सह राधया बाहुवन्धनंज्ञेयं तमो त्विष्वं यों अचिर्षा वना विष्वा पश्वज कृष्णा कृष्णेति जिह्वया।]
—सामवेद ४ प्रपाठक कृष्णराधेत्यर्थः

इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्द्रिचोदय।
—सामवेद ५ प्रपाठक

वयं ते सस्य राधसे वसोर्वसो पुरुस्पृहः। —सामवेद ५ प्रपाठक
मत्सि वायु मिष्टये राधसे नो मत्सि मित्रा वरुणा पूयमानः।
—सामवेद ५ प्रपाठक

त्वंहि राधसस्पते राधसो महः क्षयस्यासि पिधर्ता।

—सामवेद ५ प्रपाठक

दाता राधस्तुवते काम्यं वसु प्रचेतन सैनं सश्च देवो देवं सत्य इन्दुः सत्य इन्द्रम् । —सामवेद ६ प्रपाठक

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्यते । —सामवेद ७ प्रपाठक

मन्दन्तु त्वा मधवन् निन्द्रन्दवो राधोदेयाय सून्वत् । —सामवेद ८ मण्डल ३ अर्द्ध प्रपाठक

सामवेदे ४ प्रपाठके कृष्णलीला यथा—

हरि क्रीडन्तं मम्य नूषत स्तुभोपिधेनवः भयसेद शिपयु ।

[अयं मन्त्राः वैदिक यन्त्रालय अजमेर मुद्रालये मन्त्र संहितायां दर्शिता यथा विहिता संग्रहीता । सम्पादकः,]

२३ —अथर्ववेदे 'राधस' पदवाच्य मन्त्राः यथा--

न 'राधसो राधसो' नूतनस्येन्द्रनकिर्दद्दश इन्द्रियं ते । —अथर्ववेद ६ मण्डल ३ अध्याय २७ सूक्त

उद भ्राणीव 'स्तनयन्निर्यतीन्द्रो' राधां स्यश्यानि गव्या । —अथर्ववेद ६ मण्डल ४ अध्याय ४४ सूक्त

'राधां सि' या द्वानाम् । —अथर्ववेद ८ मण्डल २ अध्याय ६ सूक्त

आनो विश्वान्यश्विनाधतं राधां स्यह्लया । —अथर्ववेद ८ मण्डल २ अध्याय ८ सूक्त

न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः । —अथर्ववेद ८ मण्डल ३ अध्याय १४ सूक्त

यदिन्द्र राधो अस्तिते माधो न मद्यवत्तम । —अथर्ववेद ८ मण्डल ६ अध्याय ५४ सूक्त

त्वहि राधस्यते राधसो महः क्षयस्यासि निधत्तः । —अथर्ववेद ८ मण्डल ७ अध्याय ६१ सूक्त

सविता चित्र 'राधाः' । —अथर्ववेद ५ अनुवाक् सूक्त २६

विष्णोः पत्नि तुभ्यं राता हवींषि पतिदेवि 'राधसे' चोदय स्व । —अथर्ववेद-अनुवाक ४ सूक्त ४६

इन्द्रं वय मनु 'राधं' हवामहे नु राध्या स्म द्विपदा चतुष्पदा।
—अथर्ववेद १९ काण्ड १५ अनुवाक्

कदा मर्त मराधसं पदाक्षुम्य मिव स्फुरत। कदा न शुश्रुवद गिर इन्द्रो अङ्ग
—अथर्ववेद ५ अनुवाक् ६३ सूक्त

आमध्वो अस्या असिचन्न मत्र मिन्द्राय पूर्णं सहि सत्य राधाः।
—अथर्ववेद ७ अनुवाक् ७६ सूक्त

त्वं दाता प्रथमो 'राधसा' मस्यसि सत्य ईशान कृत्।
— अथर्ववेद ९ अनुवाक् १०४ सूक्त

सुकृत् सुते महता शूर राधसा नु स्तोम मुदीमहि।
—अथर्ववेद ९ अनुवाक् ११६ सूक्त

इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो वृहत् प्रथु।
—अथर्ववेद ९ अनुवाक् १३५ सूक्त

येनो राधां स्यश्व्या गव्या भजन्त सूरयः सुजाते अश्व सूनृते।
—अथर्ववेद ५ मण्डल ६ अध्याय

मन्त्रेन्द्रादि शब्देन श्रीकृष्णपदं ग्राह्यम्।
राधस शब्देन श्रीराधैव पदं ग्राह्यम्॥

परोक्ष प्रियाहिवेदाः।

य आत्मनि तिष्ठन् यस्यात्माशरीरं॥ —श्रुते यः आत्मनि स्व स्वरूपे तिष्ठन् राधा आत्मा देहो यस्येति॥ लघु मंजूषायाम्॥ राधा कृष्ण भूषणे उद्धृतं॥

२४—उपनिषद द्वारा—श्रीराधा यथा—

स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीय मैच्छत्।
वृहदारण्यकोपनिषदि चतुर्थ ब्राह्मणतः।

सः लीला पुरुषोत्तमः कृष्णः। नैव रेमे। तस्मादेकी भूतत्वात्। स द्वितीयं। राधां। ऐच्छदित्यर्थः।

वह लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण अवतार लेकर भी लीला विस्तार नहीं कर सके। राधा माधव मिलित एक रूप होने से।

अतः ह्लादनी शक्ति रूपा श्रीराधा को प्रकट किया। यह 'वृहदारण्यक' उपनिषद में चतुर्थ ब्राह्मण में लिखा है।

रसो वै सः। रसँ ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। कोत्येवान्यात्कः प्राण्या यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एषाह्येवानन्दयति।

तैत्तिरीयोपनिषदि। आनन्दवल्ली सप्तमोनुवाकतः।

आस्वादन वस्तु 'रस' निश्चय श्रीकृष्ण ही हैं। जिसे पाकर जीव आनन्द प्राप्त करता है। उससे परे और क्या वस्तु है ऐसा कोई स्थान ही नहीं है। वह आनन्द के अधिष्ठान 'कृष्ण' नहीं है। परन्तु उनको भी आनन्द देने वाली यह ह्लादिनी स्वरूपा राधा हैं। यह तैत्तिरीत उपनिषद में आनन्द वल्ली के सप्तम अनुवाक में लिखा है।

अयमात्मा ब्रह्मेति। अयं। श्रीकृष्णस्य। आत्मा। श्रीराधेति। शक्ति शक्तिमतोरभेदात्। ब्रह्मएवयेति इति श्रुत्यर्थः। [विशुद्धरस दीपकायां रेमे श्लोके टीकयां दत्तमिति]

यह श्रीकृष्ण की 'आत्मा' रूपा 'राधा' शक्ति मान में अभेद होने से कृष्ण ही हैं।

यद्गन्धर्वेति विश्रुता। ह्लादिनी या महाशक्तिः सर्वशक्ति वरीयसि। तत्सार भोगरूपां या मिति तन्त्रे प्रतिष्ठिता। सुष्टु कान्त स्वरूपेयं सर्वदा वार्षभानवी धृतषोड़ष शृङ्गाराद्वादशाभरणाश्रिता। गोपालोत्तर तापिन्योपनिषदि।

जिनका गान्धर्वा नाम है। सब शक्तियों में श्रेष्ठ जो ह्लादिनी महाशक्ति है उसकी सार रूपा श्रीराधा हैं। निश्चय कृष्ण स्वरूपा ही हैं, श्रीवृषभानु गोप के यहाँ जन्म लेकर कृष्ण के मिलन के लिये षोड़ष शृङ्गार द्वादश आभरण धारण करती हैं—यह तन्त्रों में लिखा है। यह गोपाल तापिनी उपनिषद में लिखा है।

कृष्णो ह वै हरिः परमो देव इत्यादि.......एवं हि तस्य शक्तयस्त्व नेक धेत्मादि.......तास्वाह्लादिनी वरीयसी मरमान्तरङ्ग भूता राधा, कृष्णेन आराध्यत इति राधा कृष्णं समाराधयति सदेति राधिका गन्धर्वेति व्यायदेश्यत इति। ये यं राधा यश्च कृष्णे रसाब्धिर्देहेतैकः क्रीड़नार्थं द्विधाभूत।

एषावै हरेः सर्वेश्वरी सर्वविद्या सनातनी कृष्ण प्राणाधिदेवी चेति विविक्ते वेदाः स्तुवन्ति यस्या गतिं वक्तुं न चोत्सहन्ते । सैव यस्य प्रसीदति तस्य करतलावकलित धामेति । एतामवज्ञाय यः कृष्ण माराधयतु मिच्छति सगूढ़ तमो मूढ़तमश्चेति । अथ हैतानिनामानि गायन्ति श्रुतयः ।

राधा रासेश्वरी रम्या कृष्ण मन्त्राधि देवता,
सर्वाद्या सर्ववन्द्या च वृन्दावन विहारिणी ।
वृन्दा राध्या रमाऽशेष गोपीमण्डल पूजिता,
सत्या सत्य परा सत्यभामा श्रीकृष्ण वल्लभा ।
वृषभानु सुता गोपी मूल प्रकृतिरीश्वरी,
गन्धर्वा राधिका रम्या रुक्मिणी परमेश्वरी ।
परात्परतरा पूर्ण पूर्ण चन्द्र निभानना,
भुक्ति मुक्तिप्रदा नित्यं भवव्याधि विनाशिनीति ।

राधोपनिषदि—अष्टोत्तरोपनिषदि ५२५ पृष्ठ

२५–तन्त्र द्वारा–श्रीराधा यथा–

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता,
सर्व लक्ष्मीमयी सर्वकान्तिः सम्मोहिनीपरा ।

—वृहत् गौत्तमीय तन्त्रे

जो कि प्रकाशमान हैं, कृष्ण की सेवा के निमित्त ही सर्वाङ्ग जिनका निर्माण हुआ है, आराधन धर्म प्राधान्य होने से जो राधिका हैं, पर देवता हैं, सब लक्ष्मी रूपा हैं, सब कान्तिमयी सम्मोहिनीपरा शक्तिरूपा हैं ।

सत्वं तत्वं परतत्वं च तत्वत्रय महंकिल,
त्रितत्व रूपिणी सापि राधाधिका परदेवता ।

—वृहद् गौत्तमीय तन्त्रे

सत्वं कार्य्यं तत्वं कारणं परतत्वं ततोऽपि भिन्नत्वमित्यर्थः ।

[विशुद्धरस दीपिका टीकायां 'रेमे' श्लोके]

सत्वगुण कार्य तत्व अर्थात् उन सत्वादि गुणों के सूक्ष्म रूप

तन्मात्र उससे भी भिन्न तुरीयतत्व स्वयं श्रीकृष्ण हैं। उसी प्रकार त्रितत्व रूपिणी वह राधिका जी भी परदेवता हैं (यह विशुद्धरस-दीपिका टीका मे "रेमेतया" व्याख्या में लिखा है।)

राधिका पद्मिनी या सा कृष्ण देवस्य वाग्भवा,
कृष्णदेवः समुद्भूतः कृष्णः पद्मदलेक्षणः।

—राधा तन्त्रे २४ पटले ४ श्लोकः

जो पद्मिनी संज्ञका राधा हैं, वह कृष्णचन्द्र की वाणी से प्रकट हुयी हैं जैसे कि कृष्णदेव स्वयं उद्भूत हैं। श्याम कमलदल से उनके नयन हैं।

केचिच्छ्रिय त्वां कतिचिच्च गौरीं परे परेशींब्रुवते कवीन्द्राः,
परात्परं ब्रह्म सनातनत्वं गुणत्रयेणैव विभर्ति लोकम्।

—मूर्द्धान्माय तन्त्रे राधा स्तवराजे

श्रीत्वेन तदेकाश्रयत्वं। 'गौरी' त्वेनार्द्धाङ्गीत्वं। परेशी त्वेन तादात्समिति। स्वरूपतस्तु—"तुरीयं त्रिषु सन्ततमि" त्यादिन्यायेनं परादपि परं यद्ब्रह्म तदेव त्वं परस्याप्यात्मेति [इति विशुद्धरस दीपिका टीकायां व्याख्या।]

कोई तुम्हें 'श्री' बतलाते हैं अर्थात् एक आश्रय तत्व हो। कोई भक्त तुम्हें गोरी कहते हैं अर्थात् अर्द्धांगिनी हो। किसी ने तुम्हें परा नाम से कहा है अर्थात् परतत्व की अधिष्ठात्री हो। स्वरूप में जो तुरीय हैं, तीनों काल में विराजमान पर वस्तु से भी है। ब्रह्म की भी आत्मा होने से उनमें तुममें अभेद है। जगत् का संरक्षण गुणत्रय द्वारा तुम्हारे से होना असम्भव नहीं है।

घना वृते व्योम्नि दिनस्यमध्ये
भाद्रेसिते नागतिथौ च सौमे,
अवाकिरन्न देवगणा स्फुरन्ति
तन्मन्दिरे नन्द न जैः प्रसूनैः।

—गर्ग संहितायां गोलोक खण्डे ८ अ० ७ श्लोक

वर्षाऋतु मध्याह्नकाल भाद्र शुक्ल अष्टमी चन्द्रवार में 'रावल' ग्राम में श्रीराधा प्रकट हुयीं उस काल में देवगणों ने नन्दन वन के प्रसूनों की जन्मस्थान पर वर्षा की।

ह्लादिनी या महाशक्तिः सर्वशक्तिवरीयसि तत्सार भूता ।। गौत्तमीय तन्त्रे ।।

तत्र राधा तापिन्याम्—

राधेति परमा प्रकृतिः सैव लक्ष्मीः सा सरस्वती सैवलोक कर्त्री लोक माता देव जननी गोलोक वासिनी गोलोक नियन्त्री वैकुण्ठाधिष्ठात्रीति ।

सैषाहि राधिका गोपीजन स्तस्याः सखीजनः ।
—गोपाल तापिन्याम् राधाकृष्ण भूषण ग्रन्थे उद्धृतम्

ममदेह स्थितैः सर्वैं देवै व्रह्म पुरोगमैः ।
आराधिता यत स्तस्माद् राधेति परि कीर्तिता ।।
—कृष्णयामले १४ अध्याय

आनन्दात्मात्मया शक्त्या राधया सहितो हरि,
नर्तयन्नर्तयामास शक्ति तां तालभेदतः ।
—शैवादिसंमतायां सूतसंहितायाम्

मृत्युञ्जयतंत्रे—
सर्वलक्ष्मी मयी देवीं परमानन्द नन्दितां ।
रासोत्सव प्रियां राधां कृष्णानन्द स्वरूपणीम् ।।

सम्मोहन तन्त्रे---
चिन्तयेद् राधिकां देवीं गोप गोकुल लंकुलां ।

तस्या श्रेष्ठत्वं आदिवाराहे—
गङ्गायाश्चोत्तरं गत्वा देव देवस्य चक्रिणः,
अरिष्टेन समं तत्र महद् युद्धं प्रवर्तित ।

घातयित्वा ततस्तास्मिन्नरिष्टं वृषरूपिणं,
कोपेन पार्ष्णिघातेन महातीर्थं प्रकल्पितं ।

स्नातस्तत्र त्वदा हृष्टो वृषं हत्वा सगोपकः,
विपाप्मा राधिकां प्राह कथं भद्रे म विष्यति ।

तदा राधा समाश्लिष्य कृष्णमक्लिष्ट कारिणं,
स्वनाम्ना विदितं कुण्डं कृतं तीर्थं मदूरतः ।

राधाकुण्ड मितिख्यातं सर्व पाप हरं शुभं,
अरिष्टहन् राधाकुण्डस्नानात् फलमवाप्यते ।
राजसूयाश्व मेधाभ्यां नात्रकार्या विचारणा,
गोहत्या ब्रह्महत्यादि पापं क्षिप्रं प्रणस्यति ।

तथा व्रतरत्नाकार धृतं भविष्यपुराणे च—

बालोपि भगवान् कृष्ण स्तरुणं रूप माश्रितः,
रेमे विहारै विविधैः प्रियमा सह राधया ।

एवं गोपालतापिन्या—'यद्गन्धर्वीति विश्रुता' सातु सैवज्ञेया । अतएव श्रीराधा सम्बलित दामोदर पूजा पाद्मे कार्तिके विहिता—"मयासह" । अत्र 'मा' शब्द प्रयोग स्तस्याः परम लक्ष्मीरूपत्वात् । तथा तत्रैव—गृहाणर्घ्यं मया दत्तं राधयासहितो हरेः । इति साक्षान्नामोक्तं ।

श्रीगोपालभट्टेन हरिभक्ति विलासे—कार्तिक मास कृत्ये बहुलाष्टम्यां पाद्म वचनं किञ्च तत्रैव श्रीराधिकोपाख्यानान्ते—वृन्दावनाधिपत्यं च दत्तं तस्या प्रहृष्यता कृष्णेनान्यत्र देवीतु राधा वृन्दावने वने ।

टीका च—

तस्याः तस्यै श्रीराधायै । अन्यत्र वृन्दावनेतरस्थाने सा देवी लक्ष्म्यादि रूपा वृन्दावनाख्ये च वने राधैव स्वयं स्वनामादिनैव प्रसिद्धेत्यर्थः ।

अचिन्त्यभेदाभेदमते । श्रीमाध्वगौड़ेश्वराचार्य श्रीरूपगोस्वामिभिः कथितं यथा—महाभाव स्वरूपेयं । तथा च—ह्लादिनीया महाशक्तिः सर्व शक्तिर्ववरीयसि तत्सार भाव रूपेयमिति । [उज्वले ७५–७६ पृष्ठे ।]

अनया राध्यते कृष्णो भगवान् हरिरीश्वरः ।
लीलया रस वापिन्या तेन राधा प्रकीर्तिता ।।

नारदपञ्चरात्र्ये—

गोपना दुच्यते गोपी श्रीराधा राधिका स्मृता । [illegible]।।

देवीकृष्णमयी ज्ञेयाराधिका पर देवता।
सर्वलक्ष्मी स्वरूपा च श्रीकृष्णानन्द दायिनी ।।
—नारद पञ्चरात्ये

२६—आगम द्वारा—श्रीराधा यथा—

यः शक्तयः समाख्याता गोपी रूपेण ताः पुनः,
सख्यो भूत्वा राधिकायाः कृष्णचन्द्र सुपासते।
—श्रीकृष्णयामले विशुद्धरसदीपिका टीकायाम्

जो कि इन्द्रादि देवों की आज्ञा से गोपी रूप से प्रकट होकर श्रीस्वामिनी राधिकाजी की सखी होकर श्रीकृष्णचन्द्र की उन देव कन्याओं ने सेवा की।

हरे रर्द्ध तनू राधा राधिकार्द्ध तनूहरिः।
अनयो रन्तरादर्शी मूर्त्यवच्छेदकोऽधमः ।।
—श्रीनारद पञ्चरात्ये

अत्र तनुशब्दः स्वरूप वचनः—इति सैव टीकायां। श्रीहरि की अर्द्ध तनू राधा हैं अर्थात् स्वरूप हैं। श्रीराधिका का आधा तनू (स्वरूप) श्रीकृष्ण हैं। जो साधक दोनों में भेद देखता है |वह एक मूर्ति की टुकड़े करने का दोषी है, अतः अधम है।

तत्प्रिया प्रकृति स्वाद्या राधिका तस्य वल्लभाः,
तत्कला कोटि कोटयंशा दुर्गाद्यास्त्रिगुणात्मिका।
एतस्यांघ्रि रज स्पर्शात् कोटि विष्णुः प्रजायते।
—वाराह संहितायाम् वृन्दावन रहस्ये

श्रीगोविन्द की आद्या प्रकृति जितनी प्रियाओं में श्रीराधिका अत्यन्त प्यारी हैं, जिनकी कोटि कोटि कला त्रिगुणात्मिका दुर्गा से आदि लेकर शक्ति हैं। इन्हीं के चरण रज के स्पर्श से कोटि विष्णु पैदा हैं।

२७—पुराण द्वारा—श्रीराधा यथा—

यथा राधा प्रिया विष्णो स्तस्या कुण्डं प्रियं तथा।
सर्व गोपीषु सैवैका विष्णो रत्यन्त वल्लभा ।।

—पद्मपुराणोत्तर खण्डे

जैसे सब गोपियों में श्रीकृष्णसेवानिष्ठा श्रीराधा जी श्रीकृष्ण चन्द्र जी की अत्यन्त प्यारी हैं, इसी प्रकार श्रीकृष्ण को उनका कुण्ड —राधाकुण्ड भी प्यारा है।

वाराणस्यां विशालाक्षी विमला पुरुषोत्तमे ।
रुक्मिणी द्वारवत्यांतु राधा वृन्दावने वने ॥

—मत्स्यपुराणे

जैसे वाराणसी में विशालाक्षी पुरुषोत्तम क्षेत्र में विमला द्वारिका में श्रीरुक्मिणी प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार श्रीवृन्दावन में अधी-श्वरी 'राधा' प्रसिद्ध हैं।

तत्राति राधिका शश्वदति प्राणप्रिया हरे,
किमहं वर्णये भाग्यं राधायाः परमाद्भुतम् ।
ब्रह्मादयोपि न विदुः परमानन्द मन्दिरं ।

—आदि पुराणे षष्ठाध्याय ८-९ श्लोक

भृङ्गराज कहते हैं कि श्रीवृषभानु के वंश में 'श्रीराधिका' श्रीहरि गोविन्द की सर्वदा अत्यन्त प्राण प्रिया हैं। इनका परमाद्भुत भाग्य कौन वर्णन कर सकता है। ब्रह्मादिक भी इनका महत्व नहीं जानते। यह आनन्द स्वरूप श्रीकृष्ण की मन्दिर रूपा हैं अर्थात् आश्रय पदार्थ हैं।

आदौ राधां सुमुच्चार्थ पश्चात्कृष्णं परात्परं,
स एव पण्डितो योगी गोलोकं याति लीलया ।

—ब्रह्मवैवर्त कृष्ण खण्डे गणेश वाक्यं। १२४ अ० १० श्लोक

पहिले राधा नाम उच्चारण कर फिर परात्पर कृष्ण का नाम जो लेता है वही पण्डित योगी अर्थात् चित्तवृत्ति निरोधी है। वह सहज में गोलोकगामी हो जाता है।

श्रीब्रह्मवैवर्त पुराणे राधिकोत्पत्तिवर्णनं यथा—

पुरा वृन्दावने रम्ये गोलोके रास मण्डले,
रत्न सिंहासने रम्ये तस्थौ तत्र जगत्पतिः ।
स्वेच्छा मयश्च भगवान् वभूवैरमणोत्सुकः,
रमणं कर्तुं मिच्छाच तद्बभूव सुरेश्वरि ।

एतस्मिन्नन्तरे दुर्गे द्विधा रूपो वभूव सः,
दक्षिणाङ्गश्च श्रीकृष्णो वामांगं सा च राधिका।
तस्याश्चांशांश कलया वभूवुर्देवयोषितः,
वभूव गोपी संघाश्च राधाया रोम कूपतः।
राधा वामांश भागेन महालक्ष्मीर्वभूव सा,
स्वयं राधा कृष्णपत्नी कृष्ण वक्षः स्थलास्थिता।
प्राणाधिष्ठातृ देवी च तस्यैव परमात्मनः,

—प्रकृति खण्ड ४८ अ०

पहिले गोलोक में श्रीवृन्दावन रासमण्डल में रत्नसिंहासन पर जगत्पति श्रीकृष्ण विराजमान थे—

स्वेच्छामय कृष्ण के खेलने की इच्छा उदय हुयी कि मैं कोई प्रिया उत्पन्न करूँ—उसी समय कृष्ण 'दो' रूप हो गये। दक्षिणाङ्ग कृष्ण और वामाङ्ग 'राधिका'।

श्रीराधिका जी के अंशांश कला से देवकन्या पैदा हुयीं। श्रीराधिका जी के रोम कूप से अनन्त व्रजगोपियाँ जन्मीं।

श्रीराधिका जी के वामांश भाग से 'महालक्ष्मी' विष्णुप्रिया प्रकट हुयीं—यह स्वयं स्वरूप श्रीकृष्ण की नित्य पत्नि स्वयं स्वरूपा श्रीराधा श्रीकृष्ण वक्षः स्थिता हैं। उन परम प्रेमास्पद कृष्णचन्द्र की प्राणाधिष्ठातृ देवी हैं।

ब्रह्मवैवर्त पुराणे-भगवता राधा तत्वं वर्णित यथा—

श्रीकृष्ण उवाच—

त्वं मे प्राणाधिका राधा प्रेयसी प्रेयसी परा,
यथा त्वं च तथाहं च भेदो हि नावयोः ध्रुवम्।
यथा क्षीरेच धावल्यं यथाग्नौ दाहिका सति,
यथा प्रथिव्यां गन्धश्च तथा हं त्वयि सन्ततम्।
विनां मृदा घटं कर्तुं बिना स्वर्णेन कुण्डलं,
कुलालः स्वर्णकारश्च नहि शक्तः कदाचन।
तथा त्वया बिना सृष्टिं न च कर्तुं महंक्षमः,
सृष्टे राधारभूता त्वं बीज रूपोऽहमच्युतः।

—श्रीकृष्ण जन्म खण्ड १५ अ० ५७ से ६० श्लोक

रा शब्दोच्चारणाद्भक्तो राति मुक्तिं सुदुर्लभां
धा शब्दोच्चारणाद्दुर्गे धावत्येव हरेः परम् ।

—प्रकृति खण्डे ४८ अ० ४० श्लोक

श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा कि हे राधे ! तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारी हो । सब प्रेयसियों में परा प्रेयसी हो । तुम और मैं का भेद निश्चय ही हम दोनों में नहीं है ।

जिस प्रकार दूध में सफेदी, अग्नि में दाहकता शक्ति, पृथ्वी में गन्ध गुण पृथक नहीं, उसी प्रकार हम दोनों सतत् मिले हुये हैं ।

जिस प्रकार मृत्तिका के बिना घट नहीं बन सकता, सुवर्ण के बिना कुण्डल कुलाल स्वर्णकार नहीं रचना कर सकते हैं, उसी प्रकार इस लीला की रचना आपके बिना मैं करने को सक्षम नहीं हूँ ।

प्रेम राज्य की सृष्टि रचना करने की आधार भूता तुम हो और बीज रूप, अच्युत मैं हूँ ।

'रा'-शब्द के उच्चारण करने से भक्तों को सुदुर्लभ मुक्ति की प्राप्ति होती है ओर 'धा'-शब्द के उच्चारण करने से परब्रह्म श्रीकृष्ण हृदय में आकर विराजमान हो जाते हैं ।

राधा कृष्णात्मिका नित्यं कृष्णो राधात्मकोध्रुवं ।

—ब्रह्माण्डे-निम्बार्काचार्यकृत दशश्लोकी व्याख्यायां लघु मंजूषायाम्—

राम सहस्रनाम रसु यथा—

राधारूपी रामचन्द्रो राधामोहनः मोहनः राधा मन्त्र स्वरूपात्मा ।

गोप्यः प्रपच्छु रुषसि कृष्णानुचरमुद्धवं ।
हरिलीला विहारांश्च तत्रैकां राधिका विना ।
राधा तद्भाव संलीना वासनायां विरामिता ।।

तोषिण्यां वासना भाष्ये-अग्निपुराणे—भाद्रे मासिसितेपक्षे या पवित्राष्टमी तिथिः । राधा जन्मोत्सवं तत्र कारयेत् कृष्ण सेवकः ।। मध्याह्ने वृश्चिके लग्ने ज्येष्ठायाः सप्तमेपदे । विप्रा मुहूर्तेऽभि जीति जाता राधा हरि प्रिया ।

स्वधर्म निर्णयामृतसिन्धौ-भविष्योत्तर पुराणे—विष्णोरष्टमी।

—यजुर्वेद २५ अध्याय

तत्र गत्वा च तै सर्द्धि समुवास जगत्पतिः,
दृष्ट्वा रासं विस्मतास्ते वभूवुर्मुनिसत्तम।
आविर्वभूव कन्यैका कृष्णस्य वाम पार्श्वतः,
धावित्वा पुष्प मानीय ददावर्ध्य प्रभोः पदे।
रासे संभूय गोलोके सादधाव हरेः पुरः,
तेन'राधा' समाख्याता पुराविद्भि र्द्विजोतम।
प्राणाधिष्ठातृ देवीसा कृष्णस्य परमात्मनः,
आविर्वभूव प्राणेभ्यः प्राणेभ्योपि गरीयसि।

—ब्रह्मवैवर्ते ब्रह्मखण्डे ५ अध्याय २४ से २७ श्लोक

तत्र गोलोके 'तैब्रर्शक्तिभिस्सार्द्ध मिति'।

भगवान् गोलोकपति कृष्ण गोलोक धाम में अपनी सब शक्तियों के सहित जब रास करने लगे उस समय सबको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उसी काल में कृष्णचन्द्र के बायें अङ्ग से एक कन्या प्रकट हुयी। वह दौड़कर प्रभू के पद में पुष्पाञ्जलि देने लगी। गोलोक में रास में श्रीहरि का वाम भाग ग्रहण किया। इसी से इनका नाम 'राधा' हुआ। तत्व वेत्ताओं ने कृष्णाराधन करने वाली होने से इन्हें राधा कहा है। यह श्रीकृष्णचन्द्र प्राणाधिष्ठात्री देवी हैं। भगवान् कृष्ण के प्राणों से आविर्भूत होने से यह प्राणप्यारी हैं।

तासांतु मध्ये या देवी तप्त चामीकर प्रभा,
द्योतमानादिशः सर्वाः कुर्वती विद्युदुज्वलाः।
प्रधानं या भगवती यया सर्वमिदं ततम्,
सृष्टि स्थित्यन्त रूपा या विद्याविद्या त्रयीपरा।
स्वरूपा-शक्ति रूपा च माया रूपा च चिन्मयी,
ब्रह्मा विष्णु शिवादीनां देह कारण कारणम्।
चरा-चरं जगत् सर्व यन्माया परिरम्भितं,
वृन्दावनेश्वरी नाम्ना राधा धात्रानु कारणात्।
तमालिंग्यं वसन्तं तं मुदा वृन्दावनेश्वरं।

—पद्मपुराणे

उन सब गोपियों में मध्य सुभागी जो बिजली के समान जो

दशों दिशाओं को प्रकाश देने वाली हैं, जो प्रधान प्रकृति है, जो सृष्टि पालन संहार करने वाली हैं, 'विद्या' 'अविद्या' परा नाम से विख्यात हैं, ब्रह्मादिकों की कारण एवं चर अचर जगत् जिसकी माया से मिला हुआ है, वह वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा ही हैं, जिनका आलिङ्गन कर वृन्दावनेश्वर आनन्दित होते हैं।

मूल प्रकृतिरेका साराधा परि कीर्तिता।

—ब्रह्मवैवर्ते ब्रह्मखण्डे ३० अध्याय

भज राधां निर्गुणांच प्रदात्रीं सर्व सम्पदां।

—पाद्मे पाताल खण्डे ६९ अध्याय

सर्व लक्ष्मी स्वरूपासा राधिका पर देवता।

—श्रीनारदीये

गौरंतु राधिका रूपं राध्यते पुरुषोत्तमः,
सर्वावस्थासु देवेशः श्रियो रूपान्तरं हितत्।

इति नारदपञ्चरात्रे ब्रह्मसंहितायां तृतीयपादे द्वितीयाध्याये

'राधा' शब्दस्य व्युत्पत्ति सामवेदे निरूपिता।
सुरासुर मुनीन्द्राणां वाञ्छितां मुक्तिदां परा,
रेफोहि कोटि जन्माघं कर्म भोगं शुभाशुभं।
आकारो गर्भवासं च मृत्युञ्च रोग मुत्सृजेत्,
धकारमायुषो हानि माकारो भव बन्धनम्।
श्रवण स्मरणोक्तिभ्यः प्रणश्यति न संशयः,
रेफोहि निश्चलां भक्ति दास्यं कृष्ण पदाम्बुजे,
सर्वेप्सितं सदानन्दं सर्व सिद्धौघ मीश्वरम्।
धकारः सहवासञ्च तत्तुल्य काल मेव च,
ददाति सार्ष्णि सारूप्यं तत्व ज्ञानं हरेः स्वयम्।
आकार स्तेजसो राशिं दान शक्ति हरौ यथा,
योग शक्ति योग मतिं सर्वकाल हरि स्मृतिम्।

'ब्रह्मवैवर्त पुराण' कृष्ण जन्म खण्ड (१३) अध्याय

'राधा-शब्द' की व्युत्पत्ति सामवेद में निरूपण की गई है। वह श्रीराधा सुर-असुर मुनियों को परम वाञ्छित मोक्ष की देने वाली हैं। राधा शब्द का 'र' कार कोटि जन्म के शुभाशुभ कर्म

भोगों से और 'आ' कार गर्भवास रोग और मृत्यु से छुड़ाता है। 'ध' कार आयुष्य की हानि से और 'आ' कार कहने सुनने और सुनाने से निस्सन्देह भव बन्धन को छुड़ाता है। 'र' कार निश्चल भक्ति तथा श्रीकृष्ण के चरणारविन्द में सर्ववाञ्छित सदानन्ददायक सर्वसिद्ध ऐश्वर्ययुक्त दास्यता एवं शरणागति प्रदान करता है। 'ध' कार अनन्तकाल तक स्वयं हरि का सहवास एवं सारूप्य तथा तत्व ज्ञान प्रदान करता है। 'अ' कार अमित तेज 'दान की शक्ति' योग की शक्ति एवं योग की मति सब काल में हरि का स्मरण कराता है।

राधेत्येवं च संसिद्धा राकारोदान वाचकः,
स्वयं निर्वाणधात्री या सा राधा परिकीर्तिता।
'रा' च रासे च भवना 'द्धा' एव धारणादहो,
हरेरालिङ्गनाधारात्तेन राधा प्रकीर्तिता।

ब्रह्म वै० कृ० ख० १७ अध्याय नारद नारायण सम्वाद

'राधा' यह शब्द स्वयं सिद्ध है औ 'रा' कार दान वाचक है। स्वयं निर्वाणधात्री (मोक्षकीधाम) होने से वह 'राधा' कहलाती हैं। 'रा' अर्थात् रास में होने से 'धा' अर्थात् धारण करने से अथवा रास में भगवान् हरि की आधार भूता होने से ही वह राधा नाम से प्रसिद्ध हैं।

जगन्माता च प्रकृति पुरुषश्च जगत्पिता,
गरीयसित्रिजगतांमाता शत गुणैः पितुः।।

राधा कृष्णेति गौरीशेत्येवं शब्दः श्रुतौश्रुतः,
कृष्ण राधेश गौरीति लोके न च कदा श्रुतः।।

आदौ पुरुष मुच्चार्य्य पश्चात्प्रकृतिमुच्चरेत्,
स भवे मातृगामीच वेदातिक्रमणे मुने।।

—ब्रह्मवैवर्त पुराण ५२ अध्याय

योगमाया परा प्रकृति रूपा श्रीराधा श्रीकृष्ण की प्राणप्रिया होने के कारण ही उनका नाम पुरुष रूप परमात्मा श्रीकृष्ण के नाम के साथ संयुक्त है—

अतः जगन्माता प्रकृति है, जगत्पिता पुरुष है, पिता से सौ

गुनी जगन्माता होती है। इसी से राधा–कृष्ण, गौरी-ईश, ऐसा क्रम शास्त्रों में सुना जाता है, ना कि कृष्ण-राधा, शङ्कर-गौरी।

अतएव जो आदि में पुरुष वाचक शब्द उच्चारण करके पीछे प्रकृति वाचक शब्द मन्त्र में उच्चारण करते हैं वह मातृ-गामी अपराध के भागी होते हैं। वेदातिक्रमण अपराध महापराध है।

श्रीराधारूप लावण्य गुणादीन्वुक्तु मक्षमः,
तद्रूपादि माहात्म्यं च लज्जेऽह मपि नारद।
त्रैलोक्येतु समर्थोहि न मातुं वक्तु मर्हति,
तद्देह रूप माधुर्य्य जगन्मोहन मोहनम्।
यद्यनन्त मूखोऽपिस्यां तद्वक्तुं नास्ति मे गतिः,
लक्षशः कमलादास्यो यस्यासा लाक्षकी मता,
एवं शत सहस्राणामीश्वरी राधिका परा।

—पद्मपुराण १६२ अध्याय

श्रीराधानाम का रहस्य परम गूढ़ है इसके रहस्य को मनुष्य तो क्या देवता ऋषि मुनि भी जानने में अशक्त हैं। भगवान् शङ्कर स्वयं श्रीनारद जी से कहते हैं कि—श्रीराधा के रूप लावण्य और गुणादिकों को कहने में मैं सर्वथा अयोग्य हूँ। हे नारद! उनके अनेक रूपादिकों के माहात्म्य से मैं लज्जित हूँ। त्रिलोकी में माता के सम्बन्ध में कोई कहने को समर्थ नहीं। जिनका देह रूप और माधुर्य जगत् को मोहित करने वाले मोहन को भी मोहित करता है।

यदि मैं अनन्त मुख वाला भी हो जाऊँ तो भी कहने में मेरो सामर्थ्य नहीं है—लाखों का मत है कि उनकी लाखों लक्ष्मी दासियाँ हैं तथा सैकड़ों हजारों की ईश्वरी वह श्रीराधा परात्परा शक्ति हैं।

कृष्णार्चायां नाधिकारो यत्तोराधार्चनं विना,
वैष्णवैस्सकलै स्तमात् स सेव्यं राधिकार्चनं।
राध्नोति सकलान् कामान् तेन राधेति कीर्तिता।

—देवीभागवते ९ स्कन्धे ५० अध्याय

श्रीराधार्चन के बिना श्रीकृष्णार्चन का अधिकार नहीं है। इससे सब वैष्णवों को श्रीराधिका जी का अर्चन करना चाहिये। सब कामनाओं को पूर्ति करने वाली होने से उन्हें राधा कहा है।

ममानन्दमयी शक्तिः श्रीराधा प्रेमरूपिणी,
तपाति प्रेम पाशेना वशोहं वशीकृतः ।
—आदि पुराणे

मेरी आनन्दमयी शक्ति प्रेम रूपिणी हैं श्रीराधा । उनके प्रेम पाश के मैं वशीभूत हूँ ।

वासना भाष्य में लिखा है—

इंदिरापति रानन्दपूर्णो वृन्दावने प्रभु नन्दयामास नन्दादीन् । अत्र इन्दिरापतिः राधापतिस्सन् नन्दयामासेत्यर्थः ।

इन्द्रापति कृष्ण ने व्रज में नन्दादिक गोपों को आनन्द दिया । यहां इन्दिरापति से श्रीराधापति कृष्ण का ही तात्पर्य है ।

२८—रसशास्त्र द्वारा 'राधा' यथा—

यः आनंदांशे ह्लादिनी तस्य श्रद्धादि क्रमे नवम भूमिका प्राप्तो सारो प्रेमा । प्रेम्णः । रति, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुरागादि मिश्रणेन सप्तम कक्षा प्राप्तः । प्रेम्णसारो भावः । भावस्यपराकाष्ठा महाभावः ।

तयोरुभययोर्मध्ये राधिका सर्वसाधिका
महाभाव स्वरूपेयं गुणै रति वरीयसि ।
उज्ज्वलनीलमणौ श्रीमद्वृन्दावनेश्वरी प्रकरणे २ अङ्क
महाभावः स्वरूपाहिं श्रीराधा परदेवता
खनिः सर्व गुणानां सा कृष्ण कान्ता शिरोमणिः ।
यस्याः चित्तेन्द्रियाङ्गानि श्रीकृष्णः प्रेम भावितं
क्रीड़ा सहायः कृष्णस्य स्वशक्तिः सैव राधिका ।।
श्रीचैतन्यचरितामृते आदि लीलायां चतुर्थ परिच्छेदे

कृष्णस्यसुखे पीड़ाशङ्कया निमिषस्यापि-असहिष्णुतादिकं यत्र स रूढ़ो महाभावः । यथा—"क्षणं युगशतमिव' श्रीशुकेनदर्शितमिति ।

कोटि ब्रह्माण्ड गतं समस्त सुखं यस्य सुखस्य लेशोऽपि न भवति समस्त वृश्चिक सर्पादि दंशकृत दुःखमपि यस्य दुःखस्य लेशो न भवति एवं भूते कृष्ण संयोग वियोगयोः सुख दुःखे यतो भवति दुसहः प्रेष्ठ विरहः अच्युताश्लेशनिर्वृत्येति शुकेन कथितं सोऽधि रूढ़ो

महाभावः तस्य मोहन मादनौ द्वे स्वरूपे। मोदनः राधिकायूथे। प्रायो वृन्दावनेश्वर्या मादनोऽयं मुदञ्चति।

श्रीरूपगोस्वामिपादेन—उज्वले वृन्दावनेश्वरी प्रकरणे

जो श्रीकृष्ण की आनन्दांश में ह्लादिनी शक्ति है, उसे साधन भक्ति या श्रद्धा, साधुसङ्ग, भजन–क्रिया, अनर्थ निवृत्ति, निष्ठा, रुचि, आसक्ति, भाव की नवम भूमिका प्राप्त सार रूप 'प्रेम-लक्षणा भक्ति' या प्रेम कहते हैं।

उसी प्रेम की रति, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग के मिश्रण से सप्तम कक्षा प्राप्त परमोत्कर्ष अवस्था का नाम भाव है।

उस भाव की चरम सीमा को 'महाभाव' कहते हैं। वह श्री-ब्रजदेवियों में ही रहता है। इन ब्रजदेवियों के मध्य श्रीराधा और चन्द्रावली दोनों प्रधान हैं। जिनमें श्रीराधा मधुवत् स्नेहमयी होने से श्रीकृष्णचन्द्र के सब मनोरथों की पूर्ति करने वाली हैं। यह महा-भाव स्वरूपा हैं। गुणों में अति श्रेष्ठ हैं। निश्चय महाभाव स्वरूपा श्रीराधा परदेवता रूप हैं, सब गुणों की खान कृष्ण कान्ताओं में शिरोमणि हैं, जिनका मन-इन्द्रिय कृष्ण प्रेम में भावित है। अर्थात् जिसमें भावना दे दी जाती है उसमें उस औषधि की सब शक्ति आ जाती है, इसी प्रकार क्रीड़ा की सहायक स्वरूप शक्ति श्रीराधिका ही हैं। (ऐसा श्रीचैतन्यचरितामृत के आदि लीला के ४ परिच्छेद में लिखा है।)

कृष्ण के सुख में विघ्न पड़ता होगा अतः एक पलक का भी विरह सहने में असहिष्णुता का नाम रूढ़ महाभाव है (जैसा कि— 'क्षण' युग शत हो गये श्रीकृष्ण के बिना गोपियों को, श्रीशुकदेव जी ने कहा है।)

करोड़ों ब्रह्माण्डों के समस्त सुख जिस सुख के सामने अत्यन्त तुच्छ हो जाएं, सर्प बिच्छुओं के काटने का दुःख जिसके सामने अत्यन्त तुच्छ हो जाय ऐसी श्रीकृष्ण के संयोग और वियोग की अवस्था का नाम अधिरूढ़ महाभाव है (जिसे कि—दुःसह प्रेष्ठ विरह और अच्युत के मिलन का आनन्द कहकर श्रीशुकदेव जी ने दिखलाया है।)

उसी अधिरूढ़ महाभाव के मोदन और मादन दो स्वरूप हैं। मोदन श्रीराधिका यूथ में और मादनाख्य अधिरूढ़ महाभाव श्रीस्वामिनी राधिकाजी में ही विराजता है।

अतः 'रस प्रकरण में'—इन्हें रस की आश्रय और श्रीकृष्ण को विषयालम्बन नाम से कहा है।

यस्या चित्तेन्द्रियाणि श्रीकृष्ण प्रेम भावितं यथा—

विशाखा प्रति राधायाः वाक्यं—

सौन्दर्य्यामृत सिन्धुभङ्ग ललना चित्ताद्रि संप्लावकः
कर्णानन्दि स नर्म रम्य वचनः कोटीन्दु शीताङ्गकः
सौरभ्यामृत संप्लवावृत जगत् पीयूष रम्याधरः
श्रीगोपेन्द्रसुतः सकर्षति बलात् पञ्चेन्द्रियाण्यालि मे ॥
नवाम्बुद लसद्द्युतिर्नव तडिन्मनोज्ञाम्बरः
त्रिभङ्ग मधुराकृतिर्मधुर वन्यवेशोज्ज्वलः
सुधांशु मधुराननः कमल कान्ति जिल्लोचनः
स मे मदन मोहनः सखि तनोति नेत्र स्पृहाम् ॥
नदज्जलद निःस्वन श्रवण कर्षि सत् सिञ्चितः
स नर्म रस सूचिकाक्षर पदार्थभङ्ग्युक्तिकः
रमादिक वराङ्गना हृदय हारि वंशी कलः
स मे मदन मोहनः सखि तनोति कर्ण स्पृहाम् ॥
कुरङ्ग मद जिद्वपुः परिमलोर्मिकृष्टाङ्गनः
स्वकाङ्ग नलिनाष्टके शशि युताब्ज गन्ध प्रथः
मदेन्दु वर चन्दनागुरु सुगन्ध चर्चार्चितः
स मे मदन मोहनः सखि तनोति नासा स्पृहाम् ॥
हरिन्मणि कपाटिका प्रतत हारि वक्षस्थलः
स्मरार्त तरुणी मनः कलुष हन्तृदोरर्गलः
सुधांशु हरि चन्दनोत्पल सिताभ्र शीताङ्गकः
स मे मदन मोहनः सखि तनोति वक्षः स्पृहाम् ॥
व्रजातुल कुलाङ्गनेतर रसालि तृष्णाहरः
प्रदीव्यदधरामृतः सुकृतिलभ्य फेलालवः
सुधाजिदहि वाल्लिका सुदल वीटिका चर्वितः

स मे मदन मोहनः सखि तनोति जिह्वा स्पृहाम् ।।

श्रीगोविन्द लीलामृते

हे सखि ! जिन प्रियतम श्रीकृष्ण का सौन्दर्यामृत समुद्र ललनाओं के चित्त रूपी पर्वत को डुबाने वाला है, कानों को आनन्द देने वाले जिनके परिहास मय वचन हैं, जिनके सुगन्धित अङ्ग करोड़ों चन्द्रों की शीतलता के समान हैं, जिसका अमृतमय रम्य अधर सब जगत् को आप्लावित करने वाला है, वह गोपेन्द्रनन्दन वलपूर्वक मेरी पांचों इन्द्रियों को खेंच रहे हैं।

जिनका नवीन मेघसा श्याम अङ्ग है, नवीन विद्युत् की आभा वाला मन मोहक पीताम्बर है, जिनकी त्रिभङ्ग मधुर आकृति है, मधुर वन के फूलों से सजाया गया 'चन्द्रमा सा मधुर आनन', कमल की कान्ति को जीतने वाले जिनके लोचन—वह मदनमोहन, हे सखि ! मेरे नेत्रों के दर्शन की स्पृहा को बढ़ा रहे हैं।

गम्भीर मेघ की भांति गर्जन युक्त कानों को आकर्षित करने वाले एवं परिहास रस को सूचित करने वाले पदार्थ भङ्गि युक्ति-युक्त जिनके वचन हैं, रमादिक वराङ्गनाओं के हृदय को हरने वाली जिनकी वंशी ध्वनि है, वह मदनमोहन, हे सखि ! मेरे कानों की सुनने की स्पृहा बढ़ा रहे हैं।

मृग के उमङ्ग को जीतने वाला जिसका वपु है, जिनकी अङ्ग परिमल कमलादिक सौगन्धियुत चन्दन अगरु द्वारा चर्चित अङ्गनाओं को आकृष्ट करती है, वह मदनमोहन, हे सखि ! मेरी नासिका की सूँघने की स्पृहा को बढ़ा रहे हैं।

इन्द्रनील मणि के कपाट के समान जिनका वृहत् वक्षस्थल है, स्मरार्त तरुणियों के मन के कल्मष को दूर करने वाला दोनों भुजा रूपी अर्गला (बेड़ा) जिसमें लगे हैं, चन्द्रमा, चन्दन, कमल, कर्पूरादि शीतल करने वाली वस्तुओं के समान शीतलकारी जिनका अङ्ग है, वह मदनमोहन, हे सखि ! मेरे वक्षोज के मिलन की स्पृहा को बढ़ा रहे हैं।

व्रज की अखिल कुलाङ्गनाओं की तृष्णा को हरने वाला जिनका अधरामृत है, उस फेलालव को सुकृती ही पा सकते हैं, अमृत

को जीतने वाली सौगन्धियुक्त वीटिका जो मुख में चबा रहे हैं, वह मदनमोहन, हे सखि ! मेरी जिह्वा के रसास्वादन की स्पृहा को बढ़ा रहे हैं।

अथ वृन्दावनेश्वर्य्या कीर्त्यन्ते प्रवरा गुणाः
मधुरेयं नववयाश्चलापांगोज्वल स्मिता।
चारु सौभाग्य रेखाढ्या गन्धोन्मादित माधवा
संगीत प्रवराभिज्ञा रम्यवाक् नर्म पण्डिता।
विनीता करुणापूर्णा विदग्धा पाटवान्विता
लज्जा शीला सुमर्यादा धैर्य गाम्भीर्य्य शालिनी।
सुविलासा महाभाव परमोत्कर्ष तर्षिणी
गोकुल प्रेम वसतिर्जगत् श्रेणी लसद् यशा।
गुर्वार्पित गुरुस्नेहा सखी प्रणयिता वशा
कृष्ण प्रिया वली मुख्या सन्तताश्रव केशवा।
वहुना किं गुणा स्तस्या संख्यातीता हरेरिव।

उज्ज्वलनीलमणौ कृष्णवल्लभा प्रकरणे

अब वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिका जी के श्रेष्ठ गुणों का वर्णन करते हैं—

यह स्वरूप में परम मधुर नव अवस्था से युक्ता हैं, चञ्चल अपाङ्ग कटाक्षयुक्त नयनों वाली हैं। मन्द हास्य युक्ता हैं, सुन्दर सौभाग्य के चिह्न जिस पर शोभित हैं ऐसे श्रीअङ्ग की गन्ध से श्री-माधव को उन्मत्त कर देती हैं। सङ्गीत शास्त्र में अग्रणीया हैं, इनके वचन रमणीय हैं। परिहास करने में पण्डिता हैं। विनय की मूर्ति हैं। कृपा से परिपूर्णा हैं। कार्य में परम चतुर पटु हैं। लज्जा जिनका स्वभाव है। मर्यादा से चलने वील हैं। धैर्य और गाम्भीय की मूर्ति हैं। सुन्दर विलास को बढ़ाने वाली हैं। महाभाव के परमोत्कर्ष को बढ़ाने वाली हैं। प्रेममय गोकुल में उनका निवास है। सब जगत् में इनका यश फैल रहा है। इन्होंने अपने को गुरुजनों को अर्पण कर दिया है। गुरुजनों में इनका स्नेह है। सखीगणों के प्रेम के यह वशी-भूत हैं, कृष्ण प्रियागणों में मुख्या हैं, सर्वदा केशव के गुण श्रवण में इनके कान लगे रहते हैं। विशेष क्या गुण वर्णन किये जाएँ श्री-स्वामिनी राधिकाजी के श्रीकृष्ण की तरह ही असंख्य गुण हैं।

महाभाव स्वरूपेयं नित्यदा वार्षभानवी
सखी प्रणय सद्गन्ध वरोद्वर्तन सुप्रभा।
कारुण्यामृत वीचिभि स्तारुण्यामृत धारया
लावण्यामृतवन्याभिः स्नापिता ग्लापितेन्दिरा।
ह्री पट्ट वस्त्र गुप्तांगी सौन्दर्य्य घुसृणाञ्चिता
श्यामलोज्वल कस्तूरी विचित्रित कलेवरा।
कम्पाश्रु पुलक स्तम्भ स्वेद गदगद रक्तता
उन्मादो जाड्य मित्येतै रत्नैर्नवभिरुत्तमैः।
क्लृप्ता लंकृति संश्लिष्टा गुणाली पुष्पमालिनी
धीरा धीरात्व सद्वासः परवासैः परिष्कृता।
प्रच्छन्न मानधम्मिल्ला सौभाग्य तिलकोज्वला
कृष्ण नाम यशः श्रावि‌श्रवनोल्लासि कर्णिका।
राग ताम्बूल रक्तोष्ठी प्रेय कौटिल्य कज्जला
प्रणय क्रोध सच्चोलो बन्ध गुप्ती कृतस्तनी।
नर्मभावित निष्यन्द स्मित कर्पूर वासिता
सौरभान्तर्गृहे गर्व पर्य्यङ्को परिलीलया।
निविष्टा प्रेम वैचित्र्य विचलत्तरलाञ्चिता
मध्यतात्म सखी स्कन्ध लीलादत्त कराम्बुजा।
श्यामा श्यामस्मरा मोदमधूली पारिपोषिका।

मुक्ताचरिते श्रीरघुनाथदासिना कथितं

यह श्रीस्वामिनी राधा वृषभानुनन्दिनी सर्वदा महाभाव स्वरूपा हैं। सहचरी गणों के प्रणय गन्ध मिश्रित सुन्दर उबटन से इनकी सुन्दर प्रभा झलक रही है। कारुण्यामृत की तरङ्गों से मुक्त तारुण्यामृत धारा में लावण्यामृत नदी में इन्हें स्नान कराया गया है। इसी से इन्दिरा भी लजाती है। लज्जा रूपी सुन्दर वस्त्र से इनका श्रीअङ्ग ढका गया है। सौन्दर्य का चन्दन चढ़ाया गया है। श्याम-सुन्दर के उज्ज्वल रस कस्तूरी से विचित्र पत्रभङ्ग कलेवर पर रचा गया है। कम्प, अश्रु, पुलक, स्तम्भ, स्वेद, गद्‌गदता, रक्तता, उन्माद, जाड्य, इन नवरत्नों के अलङ्कारों से श्रीअङ्ग अलंकृत किया गया है। गुणों के फूलों की फूलमाला पहिराई गई है। धीरा और अधीरा भाव ही इनके दोनों (लहंगा ओढ़नी) वस्त्र हैं। छिपा हुआ मन में

मान धम्मिल्ल (वेनी) है। सौभाग्य रूपी उज्वल तिलक (बैन्दी) है। कृष्णनाम रूपी कर्णफूल कर्णों में शोभित हैं। राग रूपी ताम्बूल से होठ रचे हुए हैं। प्रियतम के प्रति कुटिलता रूपी काजल नयनों में है। प्रणय क्रोध रूपी कञ्चुकी धारण किये हुये हैं। परिहास और मन्द हास्य रूपी कपूर की सुगन्धि आ रही है। गर्वरूपी पलङ्ग पर विराजमान हैं। प्रेमवैचित्री भाव के पङ्खे ढल रहे हैं। 'वयस्सन्धि–सखीमध्यावस्था' और लीलारूपी सखी के कन्धे पर श्रीहस्त रखे हुये हैं। ये श्यामा हैं अर्थात् प्राकृत अंश जिनका स्पर्श भी नहीं करता है। अप्राकृत चिन्मय कृष्णरूपी काम के मद में उन्मत्त हैं। श्याम-प्रेम का परिवेषण करने वाली हैं।

का कृष्णस्य प्रणय जनिभूः श्रीमती राधिकैका
कास्य प्रेय स्यनुपमगणा राधिकैका न चान्या।
जैह्म्यं केशे दृशि तरलता निष्ठुरत्वं कुचेस्या
वाञ्छापूर्त्यै प्रभवति हरेः राधिकैका न चान्या॥

गोविन्दलीलामृते

कृष्णस्य प्रणयोत्पत्तिका। एका श्रीमती राधिका। अस्य कृष्णस्य का प्रेयसी। अनुपम गुणा राधिकैका। अन्या न। अस्या केशे कौटिल्यं हृदिन। अन्यासां हृदि कौटिल्यं केशे न। एवं दृशि तरलता कुचे निष्ठुर त्वं ज्ञेयं। हरेर्वाञ्छा पूर्त्यै एका राधिकैव प्रभवति नान्येति [टीकायाम्]

श्रीकृष्णचन्द्र के प्रेम की उत्पत्ति का स्थान कहाँ है ?—कहना पड़ेगा कि—श्रीराधिका ही हैं। श्रीकृष्ण की प्रेयसी कौन है ?—अनुपम गुण वाली श्रीराधिका हैं। अन्य नायिका नहीं। इनके वक्ष-स्थल पर केश कौटिल्य है हृदय में नहीं। और नायिकाओं के हृदय में कौटिल्य है केशों में नहीं। इस प्रकार नयनों में तरलता, वक्षोजयों में काठिन्य जानना चाहिए। श्रीहरि की वाञ्छा पूर्ति करने वाली केवल श्रीमती राधिका ही हैं, अन्य नहीं।

इस प्रकार श्रीमती स्वामिनी राधिका जी के नाम तथा राधा तत्व पर विहङ्गम दृष्टि डाली गई है—श्रीबादरायणि शुक मुनि किशोरीजी के गुणगान की फल-स्तुति करते हुए सिद्धान्त निरूपण करते हैं कि—

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देह मास्थितः
भजते तादृशीः क्रीड़ा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ।
श्रीभा० १०-३३-३७ ॥

भूतानामैकान्तिक भक्तानां मदनुग्रहाय मानुषं देहं—अत्र देह शब्देन भावं ज्ञातव्यं । यथा कथितं—जहुर्देहं अत्र विरहभावस्यैव त्यागः । 'अष्टादश महादोषैः रहिता भगवत्तनूः' । आसमन्तात् सर्वदैव गोपजातित्व विशिष्टं नन्दात्मजोऽमितिस्थितः । यः तादृशी क्रीड़ा—तत्सुख सुखित्व मयी क्रीड़ा कुरुते । यां श्रुत्वा— उपासनं कृत्वा तत्परो राधादास्य भाव विशिष्टः उपासको भवेत् ।

ऐकान्तिक भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र ने—"मैं सर्वदा ही गोप जातित्व विशिष्ट नन्दात्मज हूँ ।" यह मानकर मानुष भाव धारण किया है । इसी से वे तत्सुख सुखित्वमयी क्रीड़ा करते हैं । उस उपासना का आचरण कर साधक राधादास्य भाव को ग्रहण करेगा ।

यहां देह शब्द का अर्थ भाव ही करना होगा । क्योंकि कृष्ण-प्रेयसियों ने रासलीला में विरह जन्य भाव का ही त्याग किया था । शास्त्र में अठारह दोषों से रहित भगवत्तनू होते हैं ।

॥ इति शम् ॥



※ श्रीराधिका महिमा ※

जयति श्रीराधिके सकल सुख साधिके,
तरुनि मनि नित्य नवतन किशोरी ।
कृष्ण तनु लीन घन रूप की चातकी,
कृष्ण मुख हिम किरन की चकोरी ।।
कृष्ण दृग भृङ्ग विश्राम हित पद्मिनी,
कृष्ण दृग मृगज बन्धन सुडोरी ।
कृष्ण अनुराग मकरन्द की मधुकरी,
कृष्ण गुण गान रस सिन्धु बोरी ।।
एक अद्‌भुत अलौकिक रीत मैं लखी,
मनसि स्यामल रङ्ग अङ्ग गोरी ।
और आश्चर्य कहूँ मैं न देख्यो सुन्यो,
चतुर चौंसठ कला तदपि भोरी ।।
विमुख पर चित्त ते चित्त जाको सदा,
करत निज नाह को चित्त चोरी ।
प्रकृति यह 'गदाधर' कहत कैसे बनै,
अमित महिमा इतै बुद्धि थोरी ।।

प्रिया शक्ति आह्लादिनी प्रिय स्वरूप आनन्द ।
तन वृन्दावन जगमगै इच्छा सखी अनन्त ।।
रूप बोल प्यारी बनी प्रियतम श्याम तमाल ।
दुहु मन मिलि एकै भये श्रीराधावल्लभ लाल ।।

× × ×

आज नीकी बनी श्री राधिका नागरी ।
कमल दक्षिण भुजा वाम भुज अंस सखि ।।
गावती सरस मिल मधुर सुर रागरी ।
सकल विद्या विदित रहसि श्रीहरिवंश हित ।।
मिलत नव कुञ्ज वर श्याम बड़ भागरी ।।

अन्य प्रकाशन —

श्रीमद्वैष्णव सिद्धान्त रत्न संग्रह—(श्रीचैतन्यचरितामृत की भूमिका)

श्रीचैतन्य चरितामृत—(आदि-मध्य-अन्त्य लीला) महाप्रभु श्रीचैतन्य का जीवनवृत्त एवं चैतन्य सम्प्रदाय-सिद्धान्त का अनुपम ग्रन्थ।

श्रीचैतन्य भागवत—सटीक, आदि मध्य अन्त्य खण्ड—महाप्रभु श्रीचैतन्य का लीला-वृत सरल-सहज अध्ययन।

श्रीनिताई चाँद—(सचित्र) श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु का सर्वांगीण तत्त्वांश, परिकरांश एवं उपासनांश। ६० भक्तों के अद्भुत जीवन चरित्र।

महाप्रभु श्रीगौरांग—(सचित्र)—श्रीमन्महाप्रभु श्रीगौरांग आविर्भाव-पञ्च-शताब्दी पर मण्डल का अनुपम प्रकाशन।

श्रीचैतन्य प्रेमसागर—पं० श्रीरामानन्द शास्त्री द्वारा लिखित सातभाग।

श्रीगौर करुणा वैशिष्ट्य—महाप्रभु श्रीचैतन्य की जीवों पर की गयी विशेष करुणा।

श्रीमहाप्रभु गौरांग चित्रावली—श्रीमन्महाप्रभु-सम्बन्धित ऐतिहासिक एवं अद्यतन ६३ चित्रों का संग्रह।

श्रीशिक्षाष्टक—श्रीमहाप्रभु द्वारा रचित उनकी सभी रचनाएँ एकसाथ।

श्रीगोपाल चम्पू—वृन्दावन लीलाओं का अनुपम ग्रन्थरत्न।

श्रीबृहद्भागवतामृत—जीव का परम साध्य क्या है, उसका साधन क्या है—इस गूढ़ विषय की गोपकुमार नामक नायक के द्वारा सहज एवं बोध गम्य व्याख्या।

श्रीकृष्णकर्णामृतम्—लीला शुक श्रीविल्वमङ्गल रचित अनुपम काव्य

श्रीमानसी सेवा—श्रीगौरगोविन्द अष्टयाम लीला स्मरण गुटिका (मानसिक सेवा)

श्रीवृन्दावन महिमामृतम्—श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती-रचित श्रीवृन्दावन की महिमा विषयक मूल एवं सरल अनुवाद सहित प्रामाणिक ग्रन्थ।

श्रीनरोत्तम-प्रार्थना—मूल एवं अनुवाद।

श्रीप्रेमभक्ति चन्द्रिका—श्रीनरोत्तम ठाकुर-रचित मूल एवं अनुवाद।

श्रीमद्भगवद्गीता—श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तिपादकृत टीका एवं अनुवाद।

श्रीतत्त्व-सन्दर्भ—मूल, अनुवाद, हिन्दी टीका सहित।

श्रीभक्ति-सन्दर्भ—मूल, अनुवाद, टीका सहित। विषय एवं श्लोक सूची सहित।

श्रीभगवत् संदर्भ—मूल, अनुवाद, टीका सहित।